हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष १५, अंक ५९, जुलाई २०१३ • Year 15, Issue 59, July 2013

इस अंक में

हिन्दी चेतना

इस अंक में

●सम्पादकीय 03
●उद्‌गार 04

साक्षात्कार

●सुधा अरोड़ा
साक्षात्कारकर्ता: अंकित जोशी 07

कहानियाँ

●किसलिए:
अनिल प्रभा कुमार 17

●अतीत की वापसी:
डॉ. अफ़रोज़ ताज 21
●कोख:
बलराम अग्रवाल 24

आलेख

●संस्मरण:
त्रासदी छः माह की, दर्द उम्र भर का
विकेश निझावन 28
●आलेख:
बाज़ीगर संसार कबीरा, जानि ढारौ पासा
डॉ.शगुफ़्ता नियाज़ 48

ग़ज़लें

●नुसरत मेहदी 34

कविताएँ

●भरत तिवारी की तीन कविताएँ 36
●डॉ. अनिता कपूर की तीन कविताएँ 37
●प्रतिभा सक्सेना की तीन कविताएँ 38
●महाभूत चन्दन राय की विशिष्ट कविता 39

हाइकु

●हरेराम समीप 40

सेदोका

●डॉ.भावना कुँअर 40

माहिया

●डॉ.हरदीप सन्धु 40

लघुकथाएँ

●राजलीला:
सुकेश साहनी 41

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

वर्ष : १५, अंक : ५९,
जुलाई-सितम्बर २०१३
मूल्य : ५ डॉलर ($5)

●आदमी के बच्चे:
प्रेम जनमेजय 41
●हिम्मत :
दीपक 'मशाल' 42

लम्बी कहानी

●वरांडे का वह कोना
नरेन्द्र कोहली 43

स्तंभ

●विश्व के आँचल से :
सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी
अखबार वाला का अंतर्पाठ
साधना अग्रवाल 31
●भाषान्तर :
मूल ओड़िया: राजेंद्र किशोर पंडा
हिन्दी अनुवाद: संविद कुमार दाश 35

●अविस्मरणीय :
महादेवी वर्मा 33

●डायरी के पृष्ठ:
रेखाचित्र : मिलाप से पहले
अखिलेश शुक्ल 51
●नव अंकुर:
नीलाक्षी फुकन नेउग 53
●अधेड़ उम्र में थामी क़लम:
सविता अग्रवाल 'सवि' 55
●पुस्तक समीक्षा :
मैं मुक्त हूँ (काव्य संग्रह)
समीक्षक-अदिति मजूमदार 56

टुकड़ा कागज़ का (गीत-संग्रह)
समीक्षक-डॉ. साधना बलवटे 57
●पुस्तकें जो हमें मिलीं: 58
●हम साथ-साथ हैं:
हमसफ़र पत्रिकाओं के नये अंक 58
●पत्रिकाएँ जो हमें मिलीं: 59
●साहित्यिक समाचार: 61
●विलोम चित्र काव्यशाला 62
●चित्र काव्यशाला 63

आख़िरी पन्ना

●सुधा ओम ढींगरा 64

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिए हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- हिन्दी चेतना जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी ।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।
- रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा ।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं ।
संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी , कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
अफ़रोज़ ताज, अमेरिका
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान, भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी', डेनमार्क
अनीता शर्मा, शिंघाई, चीन
दीपक 'मशाल', यूके
अमित कुमार सिंह, भारत
अनुपमा सिंह, मस्कट
रमा शर्मा, जापान

वित्तीय सहयोगी
अश्विनी कुमार भारद्वाज (कैनेडा)

जब उदासी ने उजालों को ढंका,
रौशनी बन मुस्कुराने आ गई,
हंस ने जब राह भटकी झील में,
चेतना रस्ता दिखाने आ गई।

-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

: आवरण :
अरविंद नारले, कैनेडा arvind.narale@sympatico.ca
: डिज़ायनिंग :
सनी गोस्वामी, पी सी लैब, सीहोर sameergoswami80@gmail.com
अंदर के चित्र: डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

सम्पादकीय

मुझे टीवी पर हिन्दी के समाचार सुनने का शौक है, लेकिन आजकल जो समाचार भारत से आ रहे हैं; उन्हें सुनकर मन खिन्न हो उठता है और बेइंतिहा तकलीफ़ होती है।

आज भारत संसार के विकसित देशों में अपना स्थान बना चुका है; विश्व के प्रगतिशील देश उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं; किन्तु यदि हम देश की वर्तमान स्थिति की ओर गम्भीरता से दृष्टिपात करें तो ऐसा विदित होता है कि देश पतन के कगार पर खड़ा है। देश में चारों ओर अराजकता, अमानुषता, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, बलात्कार का कोहरा छाया हुआ है। क्या औद्योगिक प्रगति का अर्थ यही होता है कि मानव एक दानव का रूप धारण कर ले।

जिस देश ने विश्व को वेद-पुराण, सत्यार्थ प्रकाश, कृष्ण की गीता दी, कहने का भाव- भारतीय दर्शन का समृद्ध खज़ाना दिया। जहाँ वाल्मीकि, तुलसी, मीरा, सूर, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परम हंस और स्वामी विवेकानन्द जैसे दिव्य पुरुषों ने ज्ञान की ज्योति जगाई, आज वह देश अज्ञानता के अन्धकार में डूब रहा है। जहाँ देश के नेता नैतिकता की हर सीमा का उल्लंघन कर चुके हैं, वोटों की खातिर अपना अंत:करण गिरवी रख चुके हैं, जिस देश ने गाँधी, सुभाष, पटेल, तिलक और गोखले जैसे महान् नेता पैदा किए; आज वहाँ कोई व्यक्ति नेता कहलाने के योग्य नहीं रहा। आज वहाँ सत्य-असत्य के अर्थ तक बदल गए हैं। न्याय नाम की व्यवस्था चूर-चूर हो गई है। आतंकवाद का भय हर समय मंडराता रहता है। न जाने कितने कसाब देश के अंदर छुपे हुए बैठे हैं। देश की किसी भी राजनैतिक पार्टी पर आप भरोसा नहीं कर सकते। देश के हर प्रान्त में गुण्डागर्दी छाई है। बाहुबली नेता जेल में बैठे-बैठे जो चाहे करवा सकते हैं।

क्या ऐसे भारत का सपना गाँधी जी ने देखा था? आज इस देश के पुनर्निर्माण की आवश्यकता है; जिसके लिए हमें ऐसे साहित्य का सृजन करना होगा जो समाज का प्रहरी, प्रेरक, शिक्षक, मार्गदर्शक और दर्पण बनने का काम कर सके। ऐसी रचनाएँ लिखी जानी चाहिए; जो लोगों की सोई हुई आत्माओं को जगा दें। देश प्रेम की भावनाएँ सिर्फ़ बाहरी आक्रमण के समय ही नहीं पैदा होनी चाहिए, हर समय इन भावनाओं से लबरेज़ रहना चाहिए तभी देश की भ्रष्ट व्यवस्था से लड़ा जा सकता है। पश्चिम की जिस आँधी में देश के लोग इस समय उड़ रहे हैं, क्या कभी उस पश्चिम की अच्छाइयों की ओर ध्यान दिया है, जहाँ देश पर बाहरी संकट के समय ही नहीं देश के भीतर आये संकट में भी बुद्धिजीवी कैसे अपनी विचारधारा के दायरों से निकल कर देश के भविष्य और आगामी पीढ़ी की ओर, उसकी सोच और दशा को निर्धारित करने के लिए विचार- विनमय करने लगते हैं..... ज़रूरत है भारत में उन बुद्धिजीवियों की जो एक दूसरे की विचारधारा का खंडन करने की बजाय एकजुट होकर देश के हित में सोचें। जब देश में जीवन मूल्य ही नहीं बचेंगे तो विचारधाराओं का क्या महत्त्व रह जाएगा। देश से दूर रहते हुए भी मुझे उसके लिए चिंता है और देश की सुख शान्ति की सद्भावना हमेशा हृदय में बनी रहती है।

आपका,

श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com
हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
हिन्दी चेतना का सदस्यता फार्म यहाँ
उपलब्ध है
http://www.shabdankan.com
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html

उद्गार

आपका बहुत -बहुत धन्यवाद इतनी बेहतरीन पत्रिका का लिंक देने के लिए । विश्वास कीजिए, मैं थक गयी थी यहाँ की ऊँची दुकानों के फीके पकवान खा -खाकर, और बहुत समय से निष्पक्ष और स्तरीय पत्रिका की खोज में थी। जिस भी पत्रिका को स्तरीय समझकर खोलती थी, निराशा ही हाथ लगती थी। शायद बहुतायत होने व भाई-भतीजावाद के कारण गुणवत्ता नहीं रह गयी है भारतीय पत्रिकाओं में। तब से 'हिन्दी चेतना' ही पढ़े जा रही हूँ, फिर भी मन नहीं भरा है। आप लोग विदेश में रहकर भी इसका इसकी गुणवत्ता को इतनी खूबसूरती से बनाए हुए हैं; इसके लिए निश्चय ही बधाई के पात्र हैं ।

पुन: धन्यवाद, मेरी साहित्यिक प्यास बुझाने के लिए। सादर नमन .....

-रचना आभा (भारत)

*

अंक खोला तो इस बात का बहुत मज़ा आया कि बड़े आराम से पृष्ठ किताब के पन्नों की तरह खुलते हैं। इसे पढ़ने में ज़्यादा सुख मिलता है, अड़चन नहीं होती। बधाई।

-सुषम बेदी (अमेरिका)

*

आप के द्वारा भेजे गये 'हिन्दी चेतना' के ई-संस्करण पढ़ने को मिलते रहते हैं। एक बात आप के संज्ञान में लाना चाहूँगा। क़रीब तीन दशक पहले जब रामानन्द सागर जी रामायण के रथ पर सवार हो कर टी वी के दर पर गये तो बहुतेरे लोगों ने उनसे पूछा 'सागर साहब ये आप कहाँ जा रहे हैं?' जिस का उन्होंने बड़ी ही विनम्रता से उत्तर दिया 'भविष्य की ओर'। कोई कुछ भी कहे परंतु साहित्य का अन्तर्जालीय भविष्य बहुत उज्ज्वल है। आप सभी को इस महत्कर्म के लिए अनेक साधुवाद।

-नवीन सी. चतुर्वेदी (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' का नवांक देखा। हमेशा की तरह सार्थक रचनाओं का गुलदस्ता-सा यह अंक। सुधा जी आपका आख़िरी पन्ना स्त्री विमर्श को एक अलग तरीके से देखने वाला है। आपका नज़रिया बिलकुल ही मौलिक रहता है। आपने ठीक ही कहा है -बलात्कार विकृत मानसिकता की उपज है। स्त्रियों को ले कर समाज के नज़रिए में बदलाव तभी आयेगा जब ऐसे सामायिक चिंतन सामने आते रहेंगे। आपका गागर में सागर भरने वाला वैचारिक अनुष्ठान जारी रहे। आप इसी तरह लिखती रहे, यही शुभकामना है।

-गिरीश पंकज (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल- जून २०१३ अंक मिला। उसकी हर रचना से गुज़रना अच्छा लगा। इस अंक की हर रचना ने बेहद प्रभावित किया। बेहतरीन रचनाओं को पढ़वाने के लिए आपका आभार।

-अशोक आंद्रे (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। इस बार श्याम त्रिपाठी जी का सम्पादकीय बहुत पसंद आया। विदेशों में हिन्दी का काम कर रहे भारतीयों के साथ बेगानेपन से पेश आने वाले लेखकों को विनम्र शब्दों में आपने अपने दर्द को पूरी -पूरी सफ़ाई से लिखा, पढ़कर प्रसन्नता हुई। बढ़ती उम्र में ऑन लाइन पत्रिका पढ़ नहीं सकती, यदि प्रकाशित पत्रिका न मिलती तो मुझे इन बातों की जानकारी न हो पाती। इसके लिए आपको धन्यवाद। जबसे पत्रिका आई है, कहानियाँ, कविताएँ पढ़ रही हूँ, एक भी पन्ना नहीं छोड़ा।

-वेद प्रभा आर्या (कैनेडा)

*

हमें 'हिन्दी चेतना' का यह अंक बहुत प्यारा लगा। आप इसी तरह अपनी लेखनी से देश और दुनिया में इस पत्रिका का नाम रौशन करें।

शुभ कामनाओं के साथ

-सतीश कुमार (भारत)

*

अप्रैल अंक खोला और कहानी 'दो पाटन के बीच आये के' के शीर्षक ने आकर्षित किया। मैं पहले भी लिख चुका हूँ कि मैं पत्रिका अपनी माँ को पढ़कर सुनाता हूँ, नेत्र ज्योति कम होने से वे पढ़ नहीं पातीं और वे मेरे पास यहाँ रहती हैं। मुझे लगा कि यह कहानी भारत और विदेश की सांस्कृतिक खींचातानी को लेकर होगी पर यह तो भारत-पाक विभाजन को लेकर लिखी गई है। इस कहानी ने मेरी माँ के साथ-साथ मुझे भी रुला दिया। माँ ने तो वे दिन देखें हैं और हम बचपन से ही माँ-बाऊजी से बँटवारे की ट्रेजेडी को लेकर बहुत कुछ सुनते आए हैं। कहानी के मोड़ और स्टाइल तरीफ़ के काबिल है।

मेरे बाऊजी मिलिट्री में थे इसलिए शशि पाधा के संस्मरण दिल को छूते और अपने से लगते हैं। लघुकथाएँ हमेशा की तरह मन को भाईं, रब करदा है सो....ने अधिक प्रभावित किया। हाइकु मेरी समझ से बाहर हैं, इसलिए कुछ नहीं कहूँगा।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी पर अंतर्पाठ साधना अग्रवाल ने बहुत सुलझे हुए तरीके से किया है, बिना पढ़े ही कहानी का आनंद आ गया। और लेखकों के बारे में भी ऐसा ही अंतर्पाठ करवाएँ। विपरीत परिस्थितियों में एक स्तरीय और सार्थक पत्रिका निकालने के लिए बधाई।

-अनूप बत्रा (कैलिफोर्निया, अमेरिका)

*

'हिन्दी चेतना' नियमित रूप से मिलती है। इसके लिए मैं हमेशा प्रतीक्षा करता हूँ। सारी रचनाएँ और विशेषकर कहानियाँ तो आप चुन -चुनकर लगाते हैं। अप्रैल अंक में 'दो पाटन के बीच आये के' श्री महेन्द्र दवेसर 'दीपक' की कहानी पढ़ी। क्या कहानी लिखी है। बस मेरी तो जान सी निकाल ली इस कहानी ने। कितनी बार पढ़ चुका हूँ और चाहता हूँ कि इसे आँखों के सामने ही रहने दूँ। बेहद मार्मिक कहानी है। ऐसी कहानियाँ पढ़वाने लिए आपको मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। पत्रिका वास्तव में विश्वस्तर की हिन्दी पत्रिका बन गई है। हिन्दी प्रेमियों को इस पर गर्व होना चाहिए और अन्य लोगों को भी इसकी जानकारी देनी चाहिए।

-हरीश शर्मा (कैनेडा)

*

गूगल पर विदेशों में हिन्दी की सर्च कर रहा था, तभी आपकी साइट, ब्लॉग और 'हिन्दी चेतना' से परिचय हुआ। विभोम पर 'हिन्दी चेतना' की कई पत्रिकाएँ देखीं। ऐसा लगा कि पत्रिकाओं का खज़ाना मिल गया। पूरा सप्ताह लगा पत्रिकाएँ पढ़ने में। हैरानी इस बात की है कि विदेशी धरती पर हिन्दी का इतना खूबसूरत फूल खिला हुआ है और भारत में उसकी खुशबू तक नहीं पहुँच रही। पत्रिकाएँ पढ़ने के बाद एक बात तो दावे से कह सकता हूँ कि 'हिन्दी चेतना' एक निर्गुट पत्रिका है और यही विशेषता इसके फ़ैलाव में बाधक भी हो रही होगी। तभी भारत में इसकी ख़ुशबू नहीं पहुँची। यह कैनेडा की धरती से निकलती है। पूँजीपति देश से निकलने वाली पत्रिका को हिन्दूवादी, मार्क्सवादी, वामपंथी, दक्षिणपंथी कौन इसे अपनी पत्रिका मानेगा। अनुयायी ही तो पत्रिका को बढ़ाने में मदद करते हैं, रचनाओं की परख तो बाद में होती है और फ़िर उनकी सोच के अनुसार लिखी गई रचनाएँ ही तो सराही जाती हैं।

जनवरी २०१३ के सम्पादकीय से पता चला कि 'हिन्दी चेतना' को छपते पन्द्रह वर्ष हो गए हैं, तो ज़रूर पाठक इसे सराहते होंगे वरन् बिना गुट के इतने वर्ष पत्रिका निकालना अपने आप में एक चुनौती है। असली तो पाठक ही पारखी होते हैं। सभी अंकों में उत्तम सामग्री के साथ मैंने भारत और विदेशों के हिन्दी लेखकों का समन्वय पाया है। एक तरह से पूरी वैश्विक पत्रिका। जनवरी और अप्रैल के अंक की कहानियों में विकेश निझावन की 'गाँठ', रीत कश्यप की 'सौदागर', महेन्द्र दवेसर 'दीपक' की 'दो पाटन के बीच आये के' कहानियाँ पसंद आईं और ये तीनों कहानियाँ याद रहने वाली कहानियाँ हैं। विशेषांकों में डॉ.नरेन्द्र कोहली, श्री बुल्के, श्री मदनमोहन मालवीय, डॉ. प्रेम जनमेजय एवं लघुकथा विशेषांक देख कर तो हृदय प्रसन्न हो गया। विदेशों में आप कितना काम कर रहे हैं ।

सम्पादकीय मंडल में पंकज सुबीर भी हैं देखकर सुखद अनुभूति हुई।

इसके प्रचार की ओर अधिक ध्यान दें ताकि यह पत्रिका अपना उचित स्थान पा सके। ऐसी पत्रिकाएँ हर साहित्य प्रेमी के हाथ में पहुँचनी चाहिए।

-राजेश चंदेल (इंदौर, भारत)

*

'हिन्दी चेतना' की सामग्री के स्तर का ग्राफ़ मेरे सामने ऊँचा गया है और अब यह अपनी ऊँचाइयों पर है। इसे बनाए रखें। पिछले दो अंकों की सामग्री बेहद रोचक है। साहित्य प्रेमियों के साथ-साथ आम पाठक का ध्यान भी रखा गया है। गर्व महसूस होता है कि हमारे यहाँ से एक साफ़-सुथरी साहित्यिक पत्रिका निकलती है और मैं उसकी पुरानी पाठिका हूँ। इसमें आए परिवर्तन की मैं चश्मदीद गवाह हूँ। कविताओं का मज़ा नहीं आया उसमें भी परिवर्तन लाएँ। बबिता श्रीवास्तव की 'मम्मी जी की मिक्स सब्ज़ी' में नोंक- झोंक बहुत पसंद आई। ऐसे लेख छपते रहने चाहिए।

-हरिन्द्र कौर सिंह (कैरी, अमेरिका)

*

'हिन्दी चेतना' का जनवरी २०१३ का अंक बहुत आकर्षक लगा। उसमें राजेन्द्र यादव से साक्षात्कार, आख़िरी पन्ना और नरेन्द्र कोहली की कहानी 'वरांडे का वह कोना' बहुत अच्छी हैं। रीता कश्यप की कहानी 'सौदागर' तथा विकेश निझावन की कहानी 'गाँठ' अच्छे स्तर की कहानियाँ हैं। ऐसे ही हिन्दी भाषा की सेवा करते रहें।

-गुलशन कुमार आनन्द (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल अंक मिला। उसका रंगों भरा कवर पृष्ठ देख कर मन गद-गद हो गया। कैनाडा की धरती पर 'हिन्दी चेतना' जैसी पत्रिका पढ़ने का अवसर मिला। हिन्दी भाषा और साहित्य को पत्रिका के माध्यम से जीवत रखने के लिए मैं सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी जी और उनकी सारी टीम को तहेदिल से धन्यवाद करती हूँ। आप सब की लगन और मेहनत से आज पत्रिका चरम सीमा पर है। 'हिन्दी चेतना' से जुड़ कर बेहद ख़ुशी हुई।

-उषा बधवार (टोरंटो, कैनाडा)

*

नया अंक देखा, संग्रहणीय तो है ही। हिन्दी साहित्य की विश्व स्तर पर ऐसी उत्कृष्ट सेवा के लिए आपको साधुवाद। शुभाकांक्षी

-मुरलीधर वैष्णव (भारत)

*

पत्रिका खोलते ही मैं सम्पादकीय और आख़िरी पन्ना पहले पढ़ता हूँ। इस बार का सम्पादकीय विदेशों में हो रहे हिन्दी के काम की स्पष्ट जानकारी दे गया। विश्व हिन्दी पत्रिका में इसीलिए अधूरी और ग़लत जानकारी छपी कि लिखने वालों को विदेशों में हो रहे हिन्दी के काम की सही जानकारी नहीं है, और लेख लिखने वाले नए लेखक हों या पुराने कोई भी शोध करना नहीं चाहते और पढ़ना तो आजकल बहुत कम हो गया है। आपको लेख लिखकर भारत की पत्रिकाओं में छपवाने चाहिए ताकि आप लोगों के कार्य के बारे में सब लोग जान जाएँ।

आख़िरी पन्ने की तो बात ही निराली है.... सुधाजी आप भारत आएँ तो मिलना चाहूँगा। दुआ है कि आख़िरी पन्ना हंस के संपादक राजेन्द्र यादव जी के सम्पादकीय की तरह लोकप्रिय हो।

अप्रैल अंक में महेन्द्र दवेसर 'दीपक' की कहानी 'दो पाटन के बीच आये के' और शशि पाधा के संस्मरण ने बहुत प्रभावित किया। भावना सक्सेना की कहानी भी बहुत कुछ कह गई। नीरा त्यागी की माई लिटिल ब्रदर....अलग तरह की कहानी है। नरेन्द्र कोहली जी की कहानी का विस्तार इतना लम्बा है कि अब बोरियत होने लगी है। ग़ज़लें अच्छी लगीं।

विश्व के आँचल से, में साधना अग्रवाल का अंतर्पाठ एक सुलझा हुआ लेख है। यह कहानी मेरी पढ़ी हुई है और कह सकता हूँ कि लेख पूरी तन्मयता से लिखा गया है। भाषांतर के पृष्ठ भी लुभावने रहते हैं। पिछले दो अंकों से कविताएँ कमज़ोर आ रही हैं, उनकी तरफ़ ध्यान दें।

-नितीश बंसल (सुंदरनगर, भारत)

*

अपने नाम को सार्थक करती 'हिन्दी चेतना' का अप्रैल का अंक मिला। आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ विविध रोचक और सार्थक सामग्री पत्रिका की विशेषता है। कहानियाँ, कविताएँ, आलेख और साक्षात्कार से सज्जित 'हिन्दी चेतना' अत्यधिक पठनीय बन पड़ी है। संध्या-काल से पत्रिका पढ़नी शुरू की तो अंत तक पढ़े बिना सो नहीं सकी। महेंद्र दवेसर 'दीपक' जी कहानी तथा शशि पाधा का संस्मरण मन को छू गए। कविताओं के अलग-

अलग विषय मन को कई रंगों से रंग गए। इस्मत ज़ैदी 'शेफ़ा' की ग़ज़ल ने भारत के गाँव की यादों को साकार किया है, जिसकी जड़ें गहराई से उनके मानस में सजीव हैं।

सुधा ओम ढींगरा अपनी स्मरणीय कहानियों-कविताओं के अतिरिक्त एक बहुत सफल साक्षात्कारकर्ता के रूप में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना चुकी हैं। पत्रिका में वरिष्ठ कवयित्री रेखा मैत्र से सुधा जी का महत्त्वपूर्ण साक्षात्कार एक ऐसा ही उदाहरण है। सुधा जी की एक कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' के साधना अग्रवाल द्वारा अंतर्पाठ ने यह सिद्ध किया है कि प्रेमचंद के समय का पुराना यथार्थ एक विकसित-संपन्न राष्ट्र का वर्तमान यथार्थ हो सकता है। पूरी कहानी शुरू से आखिर तक संवाद में और विवरण में विश्वसनीयता लिए हुए है।

दृष्टिकोण में डॉ .प्रीत अरोड़ा का 'विदेशों में लिखी जा रही कहानियों में यथार्थ और अलगाव के द्वंद्व'- एक महत्वपूर्ण लेख है लन्दन तथा अमरीका के कुछ कहानीकारों के उदाहरण देते हुए प्रीत जी ने यह सिद्ध किया है कि इन कहानीकारों की कहानियों का ट्रीटमेंट आम हिन्दी कहानियों से बिलकुल अलग है। ये कहानियाँ भारतीय मन को, उनके हर्ष-विषाद को नया वैश्विक विस्तार देती हैं।

पत्रिका का आख़िरी पन्ना सुधा जी की लेखनी का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। वर्षों से विदेशी भूमि पर रहते हुए भी वह भारत और उसकी समस्याओं से किस तरह से जुड़ी हुई हैं, यह उनकी पीड़ा भरे शब्दों में स्पष्ट झलकता है। विदेशी माइकल और जोडी फास्टर के अपनी कम्पनी को भारत से चीन ले जाने की बात सुधा जी को दुखी करती है। भारत में होने वाले दुखद बलात्कार की घटनाएँ उन्हें यह कहने को विवश करती हैं कि महिलाएँ स्वयं अपना सम्मान करना सीखें।

इतनी सुरुचिपूर्ण और उपयोगी पत्रिका -प्रकाशन के लिए संपादक मंडल और समस्त सहयोगियों को हार्दिक बधाई और शुभ कामनाएँ।

-पुष्पा सक्सेना (अमेरिका)

*

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें । अपनी सामग्री यूनीकोड फॉण्ट में टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें । पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें । रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखना होना ज़रूरी है । आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र भी अवश्य भेजें । चित्र की गुणवत्ता अच्छी हो तथा चित्र को अपने नाम से भेजें । पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक के आवरण का चित्र अवश्य भेजें । साथ ही प्रकाशक, मूल्य एवं प्रकाशन वर्ष भी लिख कर भेजें।

Mehul Desai

EFILE R.R.S.P Life Insurance

- Visitors to Canada Health Insurance
- Critical Life Insurance
- Individual Life Insurance
- Business Tax Returns
- Corporate Tax Returns
- Personal Tax Returns
- Retirement Planning
- Segregated Funds, R.R.S.P.
- Business Insurance
- Critical Life Insurance with Return or Premium

KDI

57 Boswell Road, Markham Ontario L6B 0G3
Tel: 416.271.8691, 416.298.7067 Fax: 905.471.2355
Email: kditax@gmail.com

स्त्री विमर्श बाज़ार का शिकार हो रहा है। आज पुरुष-विमर्श और स्त्री-विमर्श से ज़्यादा एक सह विमर्श की ज़रूरत है !

(कथाकार और सामाजिक कार्यकर्ता सुधा अरोड़ा से अंकित जोशी की बातचीत)

सुधा अरोड़ा

जन्म : 4 अक्तूबर 1946 को विभाजन पूर्व लाहौर में जन्म।

शिक्षा : कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1967 में एम.ए., बी.ए. ऑनर्स- दोनों बार प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान।

कार्यक्षेत्र : 1969 से 1971 तक कलकत्ता के दो डिग्री कॉलेजों में अध्यापन, 1993 से 1999 तक महिला संगठन 'हेल्प' से संबद्ध।

प्रकाशन : बगैर तराशे हुए(1967), युद्धविराम(1977), महानगर की मैथिली(1987), काला शुक्रवार(2003), काँसे का गिलास (2004), मेरी तेरह कहानियाँ(2005), रहोगी तुम वही(2007), (कहानी संग्रह), ऑड मैन आउट उर्फ़ बिरादरी बाहर(एकांकी), यहीं कहीं था घर (2010), (उपन्यास)।

आलेख संग्रह : आम औरत: ज़िंदा सवाल(2008), एक औरत की नोटबुक।

संपादन : 1966-67 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय की पत्रिका 'प्रक्रिया' का संपादन।

संपादित पुस्तकें : 'औरत एक कहानी' (2002) भारतीय महिला कलाकारों के आत्मकथ्यों के दो संकलन-'दहलीज़ को लाँघते हुए' और 'पंखों की उड़ान'(2003)

सम्मान : 'युद्धविराम' उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 1978 में विशेष पुरस्कार से सम्मानित साहित्य क्षेत्र में भारत निर्माण अवॉर्ड तथा अन्य पुरस्कार।

अनुवाद : कहानियाँ लगभग सभी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, फ्रेंच, पोलिश, इतालवी, चेक और जापानी भाषाओं में अनूदित, डॉ. दागमार मारकोवा द्वारा चेक, डॉ. कोकी द्वारा जापानी, हेंज वेस्लर द्वारा जर्मन तथा अलस्सांद्रे द्वारा इतालवी भाषा में कुछ कहानियों के अनुवाद।

लंदन के एक्सपरिमेंटल थिएटर द्वारा 'रहोगी तुम वही' का स्ट्रीट प्ले प्रस्तुत, चेक भाषा तथा इतालवी में भी अनूदित नाटक की प्रस्तुति।

स्तंभ लेखन : 'आम आदमी: ज़िंदा सवाल'-1977-78 में पाक्षिक 'सारिका' में। 1996-97 में महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर एक वर्ष दैनिक अखबार 'जनसत्ता' में साप्ताहिक कॉलम 'वामा' चर्चित। 'बवंडर' फिल्म की पटकथा का लेखन।

कई कहानियों पर मुंबई, दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता दूरदर्शन द्वारा लघु फ़िल्में निर्मित। रेडियो नाटक, टी.वी. धारावाहिक तथा फ़िल्म पटकथाओं का लेखन। 1993 से महिला संगठनों और महिला सलाहकार केंद्रों के सामाजिक कार्यों से जुड़ाव। टीआईएसएस, वूमेन्स वर्ल्ड तथा अन्य कई संस्थानों द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में भागीदारी।

संप्रति : 'कथादेश' मासिक में 'औरत की दुनिया' स्तंभ का संपादन। वसुंधरा पुस्तक केंद्र संबद्ध।

संपर्क :

सुधा अरोड़ा, १७०२ सलिटेयर, हीरानंदानी गार्डेन्स, पवई, मुंबई -४०० ०७६

फोन-०९७५७४ ९४५०५, ई-मेल -sudhaarora@gmail.com

मुम्बई में मैं सुधा अरोड़ा जी को उनके निवास पर मिला और उनसे लम्बी बातचीत की ....ऐसा लगा कि उनके साथ एक लम्बी यात्रा तय की और उस यात्रा में अलग-अलग विषयों के पड़ाव थे ....आइए आप भी उस यात्रा का आनन्द लें और उन पड़ावों पर ठहर कर सुधा अरोड़ा जी के विचार जानें....

सबसे पहले, अपने बचपन की कुछ स्मृतियों को साझा करेंगी?

लाहौर की पैदाइश पर बचपन कलकत्ता में गुज़रा। बचपन की पुरानी यादों में एक चार तल्ले का मकान उभरता है। चौथे तल्ले पर मुख्य सड़क की ओर खुलते हुए बरामदे वाला एक कमरा - जहाँ की सीखचों को अपनी हथेलियों में थामे मैं बड़ाबाजार की उस बेहद व्यस्त सड़क पर चलती मोटरगाड़ियाँ और ट्रामें देखती रहती थी। उस मकान में हर तल्ले पर तकरीबन बीस-एक कमरे थे और सीढ़ियों के बाएँ तरफ कोने में एक सार्वजनिक शौचालय। जिन परिवारों के पास एक से ज्यादा कमरे थे, वो रईस की श्रेणी में आ जाते थे। मुंबई में इस तरह कतार में बने हुए कमरों वाले मकानों को 'चॉल' कहा जाता है। कलकत्ता के उस मकान का बड़ा अजीब सा नाम था -'चूहामल की बाड़ी'। मकान के बीचों-बीच बड़ा सा खुला आँगन था; जहाँ एक कोने में कूड़े का ढेर पड़ा रहता था और चूहे आराम से उस ढेर पर चहलकदमी कर रहे होते, दूसरी ओर बच्चों की पाठशाला थी। इसी पाठशाला में सभी बच्चों के साथ मैं दो एकम दो, दो दूनी चार के लयबद्ध पहाड़े पढ़ती जिसकी आवाज़ चौथे तल्ले तक गूँजती। शायद मैं चार साल की रही हूँगी जब बच्चों के गाने के नाम पर

मैंने पहाड़े ही सुने और वे पहाड़े इस कदर कर्णप्रिय लगते थे कि उस 'चॉल' से निकल कर जब पिता ने शंभूनाथ पंडित स्ट्रीट के रतन भवन के तीसरे तल्ले पर अढ़ाई कमरे का फ्लैट लिया तो मेरी स्मृति में पचास-साठ बच्चों के समवेत स्वर में पहाड़े ही रचे-बसे थे।

आपका जन्म लाहौर में हुआ, क्या पाकिस्तान बनने के बाद वहाँ कभी दोबारा जाना हो पाया?

इस बात की चुभन है मन में कि फिर लाहौर देख नहीं पाई। लाहौर के कूचा कागजेयां के मोची दरवज्जे वाले मोहल्ले में मेरा जन्म हुआ। जैसा रिवाज़ था उस समय कि पहला बच्चा मायके में होता है तो माँ लाहौर गई थी और मेरे जन्म के चालीस दिन बाद माँ वापस कलकत्ता आ गईं पिता कलकत्ता में थे। बस उसके बाद विभाजन के दंगे फ़साद शुरु हो गए। फिर लाहौर जाना हो ही नहीं पाया और विभाजन के बाद ननिहाल भी कलकत्ता आ गया। मैंने लाहौर नहीं देखा पर लाहौर के गली मुहल्लों की अनगिनत कहानियाँ अपनी दादी-नानी की ज़बान से सुनी हैं। दादी तो आख़िरी बार लाहौर देखने की ललक मन में लिये ही चल बसीं। पिता अब ९४ साल के हैं पर लाहौर के नाम से आज भी उनकी आँखों में नमी आ जाती है और लाहौर की स्मृतियों में जीते हुए जब वहाँ के किस्से सुनाते हैं तो आवाज़ थरथराने लगती है। विस्थापन का दर्द गहरा होता है। अपनी जड़ों से कट कर रहना आसान नहीं होता। इसकी कसक मन के भीतर स्थायी हो जाती है।

अपने माता-पिता के बारे में कुछ बताइए।

मेरे पिता अपने परिवार के पहले स्नातक थे और उन्होंने कलकत्ता के स्कॉटिश चर्च कॉलेज से बी. कॉम किया। मेरी माँ अपने परिवार की पहली परा-स्नातक थी। हमारा परिवार एक सामान्य मध्यवर्गीय, दकियानूसी मान्यताओं वाली पृष्ठभूमि से था। उस समय जब ऐसे परिवारों की, लड़कियों की शादी पन्द्रह-सोलह साल की उम्र में कर दी जाती थी, मेरी माँ की शादी अठारहवें साल में हुई। उस वक्त माँ लाहौर की वैदिक पुत्री पाठशाला से हिन्दी में प्रभाकर पास कर चुकी थीं और साहित्य रत्न (जो एम. ए. की कक्षा के बराबर था) कर रहीं थीं। माँ पढ़ाई में काफ़ी ज़हीन थीं। मेरी माँ की

पिता अब ९४ साल के हैं पर लाहौर के नाम से आज भी उनकी आँखों में नमी आ जाती है और लाहौर की स्मृतियों में जीते हुए जब वहाँ के किस्से सुनाते हैं तो आवाज़ थरथराने लगती है। विस्थापन का दर्द गहरा होता है। अपनी जड़ों से कट कर रहना आसान नहीं होता। इसकी कसक मन के भीतर स्थायी हो जाती है।

जब शादी तय हुई तो उन्होंने सुना कि मेरे पिता की पढ़ाई कलकत्ता के स्कॉटिश चर्च कॉलेज से हुई है तो उन्होंने अपने बाउजी यानी मेरे नाना से कहा मुझे तो ऐसा अंग्रेज़ी दां नहीं चाहिए, उसे हिन्दी ज़रूर आनी चाहिए। यह सुनकर मेरे पिता ने मेरे नाना को हिन्दी में चिट्ठी लिख कर भेजी और वह जब माँ को पढ़ने के लिए दी गई तो माँ ने शरमाकर कहा कि इनकी हिन्दी तो मुझसे भी अच्छी है।

ज़ाहिर है कि पढ़ाई के संस्कार तो उन्ही दोनों से आए। मेरी शादी उम्र के २५ साल पूरे करने पर हुई पर मेरी माँ ने कभी मुझसे घर का काम नहीं करवाया। उनका कहना था इसके पढ़ने-लिखने में खलल बिल्कुल नहीं डालना है.....माँ का मानना था कि घर के काम-काज का क्या है, जब ज़िम्मेदारी सिर पर पड़ती है, लड़कियाँ अपने आप सीख जाती हैं।

आपके परिवार में आप कितने भाई-बहन हैं ?

हम दो बहनें और पाँच भाई हैं। मैं अपने माता-पिता की पहली संतान हूँ और सबसे लाड़ली भी। मेरे बाद मेरी बहन है और फिर उसके बाद पाँच भाई। छोटे भाई जुड़वाँ हैं। एक मुझे छोड़कर, मेरे सभी भाई-बहन कलकत्ता में बसे हैं। सबसे छोटा भाई प्रशांत अरोड़ा फोटोग्राफ़र है ! उसका एक बहुत अच्छा संग्रह है -''ऑटोग्राफ़ ऑन फोटोग्राफ़'' उसमें देश-विदेश के तीन हज़ार से ज्यादा कला, संगीत, नृत्य, रंगमंच, चित्रकारी की नामी गिरामी हस्तियों के चित्र संगृहीत हैं -प्रशांत के खींचे हुए फोटोग्राफ़ पर इन ख्यातिप्राप्त कलाकारों ने अपना ऑटोग्राफ़ दिया हुआ है। उसमें महाश्वेता देवी, सलमान रूश्दी और तसलीमा नसरीन समेत कई लेखक भी है। मेरे एक भाई प्रदीप की नाटक में बहुत रुचि थी। अनामिका और पदातिक जैसी रंगकर्मी संस्थाओं से जुड़ा था। उसने कई नाटक निर्देशित भी किये, कुलभूषण खरबंदा और अंजन श्रीवास्तव के साथ काम किया, लेकिन फिर वह व्यवसाय में रम गया और रंगमंच छूट गया जिसका उसे आज भी अफ़सोस है।

क्या घर के दूसरे सदस्य भी साहित्य या कला जगत से जुड़े हुए हैं ?

वैसे तो कोलकाता का हमारा अरोड़ा परिवार पूरी तरह व्यवसाय से जुड़ा परिवार है लेकिन भौतिकवादी नहीं है। कला और साहित्य की समझ के साथ ईमानदार जीवन मूल्यों वाला सात्विक, शाकाहारी, संस्कारी-एक हद तक परंपरावादी (और दकियानूसी भी) परिवार रहा है हमारा। पिता अपने छात्र काल में बेहद ज़हीन थे। स्मॉल स्केल सोप इंडस्ट्रीज़ एसोसएशन की पश्चिम बंगाल शाखा के अध्यक्ष थे और कई सरकारी आयोजनों में उन्होंने प. बंगाल का प्रतिनिधित्व किया। उनका पूरा जीवन संघर्षमय रहा। लाहौर से कलकत्ता आए तो ऐसे कमरे में रहते थे, जहाँ पूरे पैर फैलाकर सोने की जगह नहीं थी, रात भर घुटने मोड़ कर सोना पड़ता था, अपनी पढ़ाई और काबिलियत से आगे बढ़े। बैंक में नौकरी की, फिर व्यवसाय। कलकत्ता के बंगाली समाज में उनका अपना एक रुतबा था। उर्दू, अंग्रेज़ी, हिन्दी और बांग्ला -चार भाषाओं में उन्हें महारत हासिल थी। बांग्ला भाषा में ऐसा धाराप्रवाह भाषण देते कि कोई मानने को तैयार नहीं होता कि वे गैर बंगाली हैं।

साहित्य के प्रति रुचि या लगाव कहाँ से आया ?

माता-पिता दोनों से। मेरी माँ तो पढ़ाई के दौरान कविताएँ लिखा करती थीं और किताबों के बीच छिपाकर रखती थीं। उन्होंने कभी वो छपवाई नहीं

क्योंकि उस वक्त की सोच यह थी कि लड़की अगर कविताएँ लिखती है तो वह किसी के प्रेम में पड़कर बिगड़ गई है। मेरे पिता का भी साहित्य के प्रति गहरा लगाव था। हमारे घर विशाल भारत, विप्लव, हंस –ये सभी पत्रिकाएँ आती थीं। दस साल पहले महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के आर्काइव्स के लिए कवि बोधिसत्व ये सारी जिल्द बँधी पत्रिकाएँ कोलकाता से ले गये जो उस समय का दस्तावेज थीं। पिता खूब किताबें पढ़ते थे। बचपन से ही उनका रुझान उर्दू और हिन्दी साहित्य के प्रति था। भाषण प्रतियोगिता में वे हमेशा अव्वल रहते। कलकत्ता में पापा के दोस्त थे राजेंद्र यादव, तब उनकी शादी नहीं हुई थी। रतन भवन वाले घर में उनका काफी आना–जाना था। अपनी बैसाखियों के सहारे बड़ी मुश्किल से वे तीन तल्ले की सीढियाँ चढ़ते थे।

क्या वो यही साहित्यिक माहौल था जिसने आपको लेखन की तरफ मोड़ा ?

साहित्य में माँ और पापा के साहित्यिक रुझान के अलावा लेखन के दो कारण और थे। एक राजेंद्र यादव जिनकी किताबें मेरे पापा ज़बरदस्ती मुझे पढ़ने को कहते और दूसरा मेरी बीमारी, जिसे लेकर मैं महीने में छह सात दिन पलंग पर लेटी रहती। अक्सर हम कविता को पीड़ा और व्यथा से जोड़ते हैं। मुझे लगता है किसी भी रचनात्मक विधा के लिए एक कशिश या चोट का होना बहुत जरूरी है।

मैं लेखिका नहीं बनती अगर मैं बारह–तेरह साल की उम्र से बीमार नहीं रहने लगती। बचपन में, मैं काफी बीमार रहती थी। साँस की तकलीफ हो जाती। तेरह साल की उम्र में वह तकलीफ़ तो अपने आप ठीक हो गई पर एक अजीब सी बीमारी शुरू हो गई। हर पन्द्रह–बीस दिन में मेरे बाएँ हाथ की कुहनी सूजकर पारदर्शी गुब्बारा हो जाती और मैं दर्द से बेचैन रहती। न कपड़े बदले जाते और न करवट बदली जाती। ऐसा लगता जैसे बाँह के उस हिस्से में पानी भर गया है। यह स्थिति पाँच–छह दिन रहती फिर ठीक हो जाती।

घर का इकलौता बर्मा टीक का वह नक्काशीदार एंटीक पलंग ठीक खिड़की के पास था, जहाँ से पीपल का पेड़ दिखाई देता था। माँ के पास इतना समय नहीं था कि वह मेरे सिरहाने बैठी रहतीं। मेरे अलावा मुझसे छोटे छह भाई–बहन थे। सो माँ ने मेरे हाथ में एक खाली डायरी थमा दी और मैं लेटे–लेटे कविताएँ लिखा करती। डायरी में कविताएँ लिख–लिख कर ही मेरे लेखन की शुरुआत हुई।

कहानी लेखन कब शुरू हुआ ?

तेरह साल की उम्र में मैंने ''मैं नीर भरी दुःख की बदली ....'' छाप कविताएँ लिखनी शुरू की जो बाद में नई कविता के मुक्त छंद में बदल गईं हर साल अपने स्कूल की वार्षिक पत्रिका में मेरी कविताएँ लगातार छपती और प्रशंसित होती रहीं। अपनी कविताएँ मुझे निहायत बचकानी लगती थीं पर स्कूल की पत्रिका में उन्हें खूब वाहवाही मिलती थी। कहानी लिखने की शुरुआत एक हादसे की तरह हुई। २७ मई १९६४ का वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है जब चाचा नेहरू की मृत्यु हुई थी और सब रेडियो के इर्द–गिर्द सिमट आये थे। बड़े–बच्चे–बूढ़े सब बिलख रहे थे। मैं करीब एक सप्ताह से लगातार बिस्तर पर थी अपनी बीमारी के साथ। न इस बीमारी का कोई नाम था, न इलाज। बस डायरी में ही लेटे–लेटे प्रेम की एक काल्पनिक स्थिति ने जन्म लिया और एक भावुक सी कहानी लिख डाली। इस कहानी का शीर्षक था –''एक सेंटीमेंटल डायरी की मौत।''

कहानी लिख कर पिता जी को पढ़ाई, मेरी माँ तो कहानी पढ़ कर रोने लगीं कि क्या हो गया है मुझे ! इतना क्यूँ मौत से डर रही है, बीमारियाँ होती हैं ठीक हो जाती हैं। लेकिन पिता ने बहुत प्रोत्साहन दिया और कहा कि इस कहानी को किसी पत्रिका में छपने के लिए भेज दो। उनके कहने पर 'सारिका' में कहानी पोस्ट कर दी। उस वक्त 'सारिका' के संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार थे। कहानी भेजने के एक महीने बाद मुझे कहानी की स्वीकृति का पोस्टकार्ड आया, पर वह छपी मार्च १९६६ में और तब तक मेरी तीन चार कहानियाँ ज्ञानोदय, धर्मयुग, रूपाम्बरा, लहर आदि पत्र–पत्रिकाओं में छप चुकी थीं।

आपकी पहली प्रकाशित कहानी कौन सी थी ?

मरी हुई चीज़ मेरी पहली प्रकाशित कहानी थी जो कलकत्ता से ही प्रकाशित पत्रिका 'ज्ञानोदय' के सितम्बर १९६५ अंक में प्रकाशित हुई थी। कोई विश्वास नहीं करता था उस वक्त कि इस कहानी

अंकित जोशी
१७७२/६, टा कलोनी, पंतनगर,
उत्तराखंड –२६३ १४५
फोन –०९५९४७ ४९८४०,
ई–मेल –ankitjoshi85@gmail.com

का कथानायक बिलकुल काल्पनिक है। मेरे दादा जी स्थायी रूप से हरिद्वार शिफ्ट हो गए थे और हम तीन–चार भाई बहन हर साल छुट्टियों में हरिद्वार, ऋषिकेश, देहरादून, मसूरी जाया करते थे। यात्रा संस्मरण लिखने की कशिश को मैंने कहानी विधा में ढाल दिया था।

आपकी कहानियों पर पाठकों की प्रतिक्रियाएँ कैसी थी? किन पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ छपीं और पहला कथा संग्रह कब आया ?

मरी हुई चीज़ कहानी पर मिली प्रतिक्रियाओं ने एकाएक मुझे लेखिका के आसन पर बिठा दिया। मुझे अपनी शुरूआती कहानियाँ बेहद बचकानी लगती हैं। मैंने उन कहानियों को अपने पहले संग्रह के अलावा कहीं संकलित नहीं होने दिया। मैं आज भी समझ नहीं पाती कि उन कहानियों में चर्चित होने जैसा क्या था ! पर उस संग्रह पर डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. धनंजय, डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. धनंजय वर्मा की समीक्षाएँ छपीं, जो आज भी मुझे हैरत में डालती हैं क्योंकि मेरी शुरूआती दौर की कहानियाँ सचमुच बेहद अपरिपक्व और गढ़ी हुई कहानियाँ हैं। एक वजह शायद यह भी रही होगी कि उस वक्त हिन्दी लेखन के परिदृश्य पर लेखिकाएँ उँगलियों पर गिनी जाने लायक थीं। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और उषा प्रियम्वदा के बाद उभरती पीढ़ी में सिर्फ़ ममता अग्रवाल और अनीता औलक का नाम था। मुझे इन उभरते नामों के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज कराने का ज़रा भी अंदेशा नहीं था। उन दिनों तो मैं

एक जूनून की तरह लिखती थी। मौत, निराशा और अवसाद से उबरने का मुझे एक आउटलेट मिल गया था।

१९९५ से १९६७ तक धर्मयुग, सारिका, कहानी, नई कहानी, माध्यम, कल्पना, लहर, उत्कर्ष, युयुत्सा, शताब्दी, रूपाम्बरा आदि कई कथा पत्रिकाओं में मेरी कहानियाँ छप रही थीं और १९६७ में जब मैं एम. ए. की छात्रा थी, मेरा पहला कहानी संग्रह ''बगैर तराशे हुए'' आ गया था।

आपकी शुरूआती कहानियों का अनुभव आपकी बीमारी से काफ़ी हद तक जुड़ा था? सन् साठ के दशक में लेखन में कैसा दौर चल रहा था ?

हाँ, एक सेंटीमेंटल डायरी की मौत लिखने के बाद मैं अपनी बीमारी की हताशा से एक हद तक उबर आई। लेखन एक अच्छा निकास का जरिया हो सकता है, यह समझ में आ गया था। इसमें संदेह नहीं कि कला व्यक्ति को कुंठा, निराशा, हताशा, अकेलेपन की खाई से हाथ पकड़कर बाहर निकालने में सहायक होती है। बाद में १९६६ में मैंने इसी कुहनी की बीमारी पर एक गैर भावुक कहानी 'निर्मम' लिखी जो मासिक पत्रिका ज्ञानोदय अगस्त १९६६ में छपी थी। मेरी माँ अक्सर टोकती थीं कि ऐसी हताशा और निराशा की कथाएँ क्यों लिख रही हो। १८ वर्ष की उम्र में अनुभव का दायरा भी बहुत सीमित था। ये निहायत आत्मकेंद्रित कहानियाँ थीं जिनका एक ही प्लस प्वॉयंट माना जा सकता है कि उसमें कहीं कोई तराश नहीं थी। चूंकि कथा शिल्प की न कोई समझ थी, न भाषा का कोई जखीरा था तो वह अनगढ़पन ही उन कथाओं को सहज संप्रेषित करता हो शायद!

एक किस्सा याद आता है –जब मैं एम.ए. के दौरान कॉलेज जाती थी तो एक दिन अपनी ही किसी धुन में गुम मैंने घर से यूनिवर्सिटी को जाने वाली '२ बी' नम्बर की बस लेने के बजाय '८ बी' बस पकड़ ली और वो '८ बी' बस मुझे ले गई हावड़ा, और जब सामने हावड़ा का पुल देखा तो मेरे छक्के छूट गये। बेतरह घबरा गई मैं। उसी किस्से पर एक कहानी लिख डाली। तो ऐसे ही छोटी-छोटी घटनाओं पर कहानियाँ लिखती रही।

उस दौर का लेखन एक हद तक समाज से कटा हुआ, अंतर्मुखी, वैयक्तिक किस्म का लेखन

शादी के बाद वैसे भी हर लड़की अपने सपनों की दुनिया से सीधे ज़मीन पर आ जाती है, नून-तेल-लकड़ी की कीमत पता चलती है, ज़िन्दगी से सीधी मुठभेड़ होती है, मेच्योरिटी आती है तो लेखन इससे बचा कैसे रह सकता है !

था और उसी दौरान मैंने भी लिखना शुरू किया तो ज़ाहिर है, उसका प्रभाव जाने अनजाने अवचेतन पर पड़ा। १९६६-६७ के दौरान ही कमलेश्वर जी ने धर्मयुग में एक धुंआधार लेख लिखा था –''एय्याश प्रेतों का विद्रोह'' जिसमें उन्होंने उस दौर के युवा लेखन की धज्जियाँ उड़ा कर रख दी थीं। बहुचर्चित लेख था वह !

आपकी लेखन शैली में बदलाव किस कहानी से आया ?

१९६८ के बाद मैंने बलवा, युद्धविराम, दमनचक्र आदि कहानियाँ लिखीं। वे किशोर अवस्था की भावुकता से बाहर आकर लिखी गईं कहानियाँ थीं और अपने दायरे से बाहर आकर, नज़रिए के व्यापक होने का प्रमाण थीं।

जब कोलकाता में राजनीतिक हलचलें और नक्सलवाद उठान पर था, तब मैंने 'बलवा' कहानी लिखी थी। यह कहानी राजनीति के व्यूह में अचानक फँस गये एक मासूम गंवई आदमी की कहानी थी, जो व्यवस्था, पुलिस और सत्ता का शिकार होकर अपना सब कुछ गँवा बैठता है। पहली बार इसके ज़रिये मैंने अपने 'स्व' से निकल कर समाज से जुड़ने की कोशिश की थी।

आपकी शादी कब हुई और लेखन पर उसका कितना प्रभाव पड़ा ?

१९६८ में मेरी जितेन्द्र जी से पहचान हुई। उन्होंने लेखन शुरू किया था। आई.आई.टी. मुम्बई में वे पढ़ते थे और मैं कलकत्ता में थी। हमारा परिचय लेखन की वजह से ही हुआ। धर्मयुग और सारिका में उनकी कहानियाँ छप रही थीं। हम दोनों का पत्र-व्यवहार 'प्रिय भाई' और 'प्रिय बहन' से शुरू हुआ। उस वक्त ये संबोधन आम थे। पत्र व्यवहार चलता रहा। जब १९६९ में घरवालों की तरफ़ से मुझ पर शादी का दबाव बना तो मैंने उनसे कहा कि अगर आप चाहें तो हम एक बार मिल सकते हैं। तब वह कलकत्ता आये और फिर हमने तय कर लिया था लेकिन हमारी शादी १९७१ में हुई। शादी के बाद मुंबई में मकान न मिलने की एक व्यावहारिक समस्या थी; जिसकी वजह से मैं मुम्बई और कलकत्ता के बीच शंटिंग करती रही। लेखन कम हो गया था।

शादी के बाद वैसे भी हर लड़की अपने सपनों की दुनिया से सीधे ज़मीन पर आ जाती है, नून-तेल-लकड़ी की कीमत पता चलती है, ज़िन्दगी से सीधी मुठभेड़ होती है, मेच्योरिटी आती है तो लेखन इससे बचा कैसे रह सकता है ! शादी के बाद कोई दूसरा माहौल मिलता तो अलग किस्म की कहानियाँ होतीं। उन छह-सात सालों में जो सात कहानियाँ मैंने लिखीं –वे सब चर्चित रहीं –महानगर की मैथिलि, युद्धविराम, दमनचक्र, तानाशाही, तेरहवें माले से ज़िन्दगी, सात सौ का कोट वगैरह ! आय.आय.टी.का अपना एक कल्चर है, जो सबको अपने देश और समाज के सरोकारों से जोड़ता है तो ज़ाहिर है, इसका असर मेरे लेखन पर भी आया।

मेरे दूसरे कहानी संकलन युद्धविराम पर १९७८ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का एक पुरस्कार भी मिला, पर इससे प्रोत्साहन पाने की जगह मेरा लेखन बंद ही हो गया। १९७९ से १९९३ तक तेरह चौदह साल के लिए। यही वह दौर था जब मैं कुछ नहीं लिख पाई। लेखन कम होते होते बंद ही हो गया।

कोई खास वजह ?

बहुत बारीक खुर्दबीन से देखने की ज़रूरत है उस समय को। लिखूंगी इस पर कभी। ये अकेले मेरी कहानी नहीं है। ढेर सारी प्रतिभावान महिलाओं के साथ यही होता है। लिखने के लिये एक मोटिवेशन की ज़रूरत होती है। 'कथादेश' में एक स्तंभ शुरू किया है--राख में दबी चिंगारी। मैंने तो १३-१४ साल ही लिखना बंद किया लेकिन ऐसी भी लेखिकाएँ हैं जिन्होंने २५-३० साल नहीं लिखा।

जो अपनी शादी से पहले धर्मयुग और अन्य प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपकर चर्चित हो गई थीं, शादी के बाद जिन्होंने लेखन बंद कर दिया और घर गृहस्थी की चक्की में अपने को झोंक दिया (यही हाल कमोबेश मेरा भी रहा)। जब उनके बच्चे बड़े हो गए तो फिर से लिखना शुरू किया और दोबारा अपनी पहचान बनाई। उन महिला रचनाकारों पर यह फोकस है। जब एक लंबे अंतराल के बाद दोबारा कोई लेखिका कलम पकड़ती है तो चुप्पी का यह लंबा समय हाइबरनेशन पीरियड का भी काम करता है। अपनी प्रतिभा, अपने सृजनशील अंश पर वह भरसक राख डाल चुकी होती है पर सुलगती हुई चिंगारी कहीं बची रह जाती है; जो विस्फोट बनकर उभरती है। आप एक स्पार्क को कितना दबा कर रखेंगे, वह आखिरकार आपको अपनी आभा से आलोकित करेगा ही ! हाँ, पर जो बंजर समय गुज़र जाता है, उसे लौटाया तो नहीं जा सकता। उसकी कसक हमेशा भीतर रह जाती है। ऐसी भी बहुत सी रचनाकार हैं जो शादी के बाद गुमनामी के अँधेरे में ही खो गईं। उन्होंने हाथ में फिर कलम पकड़ी ही नहीं।

एक लंबे अंतराल तक लेखन को विराम देने के बाद आपने फिर कब से लेखन प्रारंभ किया ?

१९९३ तक मेरे लेखन की दुनिया में पूरा सन्नाटा रहा। १९९३ में मैंने रिंकी भट्टाचार्य की संस्था ''हेल्प'' में स्वैच्छिक कार्यकर्ता की तरह काम शुरू किया। 'हेल्प' महिला काउंसलिंग सेंटर ने मेरे जीवन को एक नयी दिशा दी, एक समझ दी। मैंने अपने आत्मकथांश में लिखा है -''इसमें संदेह नहीं कि अगर हेल्प की दुनिया से मेरा परिचय न हुआ होता और मैंने दुबारा लिखना न शुरू किया होता तो मैं आम घरेलू गृहिणी की तरह, शादी की सालगिरह की तारीख अक्सर भूल जाने वाले एक सफल अफसर पति के घर की चहारदीवारी में कैद, बेहद कुण्ठित, बात-बात में झल्लाने वाली, बाहर की दुनिया से मुँह छिपाने वाली, एक शिजोफ्रेनिक पत्नी होती, जो अपने पति के सरनेम से ही जानी जाती। मेरे लेखन की दूसरी पारी में ''हेल्प'' का बहुत सकारात्मक योगदान है !''

उसके बाद मेरी कहानी रहोगी तुम वही 'हंस' के जून १९९४ अंक में छपी। दो पन्नों में छपी इस छोटी सी कहानी को लोगों ने ऐसे हाथों-हाथ लिया कि लगा ही नहीं कि बिना कुछ लिखे तेरह-चौदह साल गुज़र गए हैं। यह कहानी चर्चित हुई। विदेशों में भी इसके कई नुक्कड़ नाटक हुए। एक बार जब दोबारा लिखना शुरू हो गया तो वह रुका नहीं। चाहे परिमाण में बहुत ज्यादा नहीं लिखा पर इन्टेंसिटी तो थी इसलिए उसने सबका ध्यान खींचा!

आज आपको स्त्री विमर्श के साथ जोड़ के देखा जाता है, इस बारे में क्या सोचती हैं ?

लोग मुझसे पूछते हैं कि आप कब से स्त्री-विमर्श कर रही हैं। सच कहूँ तो मुझे स्त्री-विमर्श का क-ख तक नहीं मालूम था। मेरी दूसरी बेटी की जन्मतिथि ८ मार्च १९८२ है लेकिन सन् '८२ तक मुझे नहीं पता था कि ८ मार्च को अन्तराष्ट्रीय महिला दिवस होता है। उसका महत्त्व, इतिहास मुझे कुछ नहीं मालूम था।

तेरह-चौदह साल जब मैंने कुछ नहीं लिखा था उस वक्त भी अपने आस पास की स्थितियों को देख तो रही थी कि औरतों के साथ कितना ग़ैर बराबरी का सुलूक किया जाता है, घरेलू श्रम की कोई कीमत नहीं है बल्कि एक पढ़ी-लिखी औरत का दर्ज़ा भी एक संभ्रांत नौकरानी से ज़्यादा का नहीं होता, फिर कभी भी किसी भी वक्त उसे पैतृक या वैवाहिक संपत्ति से बेदखल किया जा सकता है और भावात्मक सम्बन्धों को बनाए रखने के कारण वे अपने साथ हुई ज़्यादतियों को नज़रअंदाज़ करती रहती हैं। १९९७-९८ में जब मैंने दैनिक अखबार 'जनसत्ता' में साप्ताहिक कलम 'वामा' लिखना शुरू किया तभी पाठक और खास तौर पर पाठिकाओं से मिली प्रतिक्रियाओं से मुझे यह समझ में आ गया कि इस तरह के एक पृष्ठीय स्तंभ की कितनी ज़रूरत है। उन दिनों मुझे लगा कि सिर्फ़ कहानियाँ लिखना काफ़ी नहीं है। अगर समाज में स्त्रियों की समस्याओं का हल ढूँढना है, उनमें एक जागरूकता पैदा करनी है तो वह कहानी से ज़्यादा दैनिक अखबारों के इन छोटे छोटे स्तम्भ के ज़रिए की जा सकती है। स्त्री मुद्दों पर कई आलेख भी लिखे पर सैद्धांतिकी पर मैंने ज़्यादा बात नहीं की। व्यावहारिक मुद्दों को ही उठाया और स्त्री में अपने अधिकारों के लिये एक जागरूकता पैदा करने की कोशिश की।

क्या आजकल स्त्री-विमर्श का एक भ्रामक दौर चल रहा है ?

देख रही हूँ कि स्त्री विमर्श बाज़ार का शिकार हो रहा है। मार्च महीना आया नहीं कि हर पत्रिका महिला रचनाकार अंक निकालने की जुगत में लग जाती है। सिर्फ़ स्त्री होने भर से आप प्रामाणिकता और ईमानदारी से स्त्री मुद्दों पर बात कर पायेंगे, यह ज़रूरी नहीं है। एक महिला रचनाकार अपने जीवन में स्त्रियों की समस्याओं के हल ढूँढने से कितना सरोकार रखती है, पास-पड़ोस की प्रताड़ित महिलाओं की मदद करने में कितना आगे आती है-यह सब मायने रखता है। बातें तो आप बड़ी-बड़ी कर लें पर ज़िन्दगी और लेखन में आप सिर्फ़ एक गला काट प्रतिस्पर्धा में लगे हैं, अपने पुरस्कारों और किताबों के प्रोमोशन में बझे हैं तो आप का सरोकार सिर्फ़ आप खुद हैं। साहित्य के सरोकार बड़े होते हैं। वहाँ सबसे पहले अपनी क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं को होम करना पड़ता है पर आज के उपभोक्तावादी दौर में इस रवैये को नितांत अव्यावहारिक ठहरा दिया जाएगा क्योंकि, आज जुगाड़ू हुए बिना आप कहीं पहुँच नहीं सकते। यह एक कारण है कि दूसरे दर्जे का लेखन पुरस्कृत हो रहा है, चर्चित हो रहा है, पाठ्यक्रम में पढ़ाया जा रहा है। इसका सबसे बड़ा खामियाज़ा साहित्य को ही भुगतना पड़ता है।

आज जिनका स्त्री-विमर्श से दूर-दूर तक कोई लेना देना नहीं है, जिन्होंने एक आरामपरस्त ज़िन्दगी जी और आँख खोलकर देखा भी नहीं कि उनके पड़ोस में क्या हो रहा है, वो पूछती हैं कि उन्हें स्त्री-विमर्श पर कौन सी किताबें पढ़नी चाहिए? कारण पूछें तो जवाब मिलता है कि स्त्रियों की समस्याओं पर एक उपन्यास लिख रही है। यह तो बिलकुल ऐसा है कि आज यह मुद्दा बिकाऊ है तो चलो स्त्री-विमर्श पर उपन्यास लिख डालो। मैंने तो स्त्री-विमर्श को कभी ऐसे सायास देखा नहीं। १९९३ में ''रहोगी तुम वही'' कहानी से लेकर १९९८ में ''अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी'' लिखने तक मुझे नहीं मालूम था कि मैं स्त्री विमर्श कर रही हूँ। अपने आसपास जो देख रही थी, जो तकलीफ़ें मेरे गले की फाँस बन रही थीं,उन्हें लिख रही थी। लेखन अपने को तकलीफ़ से बाहर निकालने का जरिया था।

''हंस'' के चलते एक ऐसा दौर आया जब कुछ महिला रचनाकारों ने बलात्कार और देह के

खुलासों पर कहानियाँ लिखीं। उन कहानियों का कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है क्योंकि वे माँग पूर्ति के तहत गढ़ी हुई कहानियाँ थीं, स्वत:स्फूर्त रचनाएँ नहीं थीं। आज भी कुछ रचनाकार जिस तरह न्यूड पार्टी या सामूहिक बलात्कार और दैहिक लिप्सा की रोमांचकारी और सनसनीखेज कहानियाँ लिख रही हैं, वह उनकी अपनी देहवादी मानसिकता को दर्शाता है। स्त्री विमर्श दरअसल पितृसत्ता, सम्पत्ति में भागीदारी और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक रूप से स्त्रियों की बराबरी और सम्मान का मुद्दा है लेकिन उसे नितांत दैहिक लिजलिजेपन और अनियंत्रित बयान तक सीमित कर दिया गया है। कम से कम मैं इसे स्त्री विमर्श नहीं मानती। यह पुरुषों की आकांक्षाओं को ही समर्थन देता और तात्कालिक संस्तुति पाता एक गुज़र जाने वाला झोंका है जो अन्तत:साहित्य के इतिहास में अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करवा पाएगा और खारिज कर दिया जाएगा।

मैंने आपके जितने भी लेख पढ़े हैं, स्त्री विमर्श, स्त्री सशक्तीकरण, स्त्री जागरण को लेकर हैं। स्त्री विमर्श पर बहुत कुछ लिखा गया है और कई संस्थाएँ अलग-अलग मंचों पर नारी की दशा सुधारने के लिए कार्य भी कर रही हैं। पर क्रांतिकारी परिणाम सामने नहीं आए, परिवर्तन जो दिखाई देते हैं, बाहरी हैं। ऐसा महसूस होने लगा था कि नारी आन्दोलन की ज़रूरत है, दामिनी के लिए आन्दोलन भी हुआ पर बलात्कार और भी बढ़ गए, समस्या का कोई समाधान नहीं हुआ। इसके बारे में क्या सोचती हैं आप ?

आपने एक साथ कई सवाल कर दिये और साथ ही स्त्री आंदोलन को लेकर आपका एक निचोड़ भी इसी सवाल में निहित है। सबसे पहले दो बातें कि सिर्फ भारत में ही नहीं, स्त्री की समस्या वैश्विक है। सदियों से नारी को दोयम दर्जा दिया गया। उनके श्रम की कीमत कम आँकी गई। जब परिवार बना तभी से यह दर्जा तय हुआ। पुरुष ने स्त्री को घर के काम दिये। वह बाहर गया। जाने-आने के बीच उसके काम के घंटे निश्चित हुए। लेकिन स्त्री के काम के घंटे तय नहीं हुए ;क्योंकि वह बाहर गई ही नहीं। इसीलिए एक स्त्री के काम के घंटे जागने से शुरू होते हैं और सोने तक चलते

पुरुष दूसरी स्त्री से संबंध बना सकता था; लेकिन स्त्री के सामने यह सहूलियत नहीं थी; क्योंकि गर्भधारण के बाद अगर वह अपने बच्चे के जायज पिता की संतान न साबित कर पाई तो वह चरित्रहीन साबित हो जाएगी और उसको बहिष्कृत कर दिया जाएगा।

रहते हैं इसका दूसरा सबसे भयानक पक्ष था स्त्री-श्रम की कीमत न होना। चूँकि पुरुष के काम के घंटे तय थे इसलिए उसका पारिश्रमिक तय था। पारिश्रमिक तय होने से उसका दर्जा भी तय था। लेकिन स्त्री का कुछ तय नहीं था बल्कि उस पर सब थोपा हुआ था इसलिए उसका दर्जा शुरू से ही कम हो गया जो पारिवारिक रूप से तो आज भी निचली पायदान पर वहीं है। जहाँ तक नज़र दौड़ाइए, वहाँ तक इस बात को देख सकती हैं।

दूसरे चरण में जब समाज नामक संस्था बनी जो कि परिवार की बड़ी इकाई थी और परिवार को नियंत्रित करती थी तो स्त्री पर और बंधन लादे गए और उसकी आज़ादी हड़प ली गई। समाज ने विवाह को जैसे ही नियंत्रित किया वैसे ही अपनी कोख पर स्त्री का अधिकार छीन लिया। अब न स्त्री-पुरुष के संबंध आदिम रहे और न उनकी प्राकृतिकता ही बच सकी। इसमें भी एक चीज़ यह थी कि समाज के नियंत्रण में विवाह निजी संपत्ति और पितृसत्ता को विकसित करने का माध्यम तो; था लेकिन उसमें पुरुष और स्त्री के अधिकार और बन्दिशें अलग-अलग थी। यानी पुरुष दूसरी स्त्री से संबंध बना सकता था; लेकिन स्त्री के सामने यह सहूलियत नहीं थी; क्योंकि गर्भधारण के बाद अगर वह अपने बच्चे के जायज पिता की संतान न साबित कर पाई तो वह चरित्रहीन साबित हो जाएगी और उसको बहिष्कृत कर दिया जाएगा। एक विवाही, बहुविवाही और पितृकुल अथवा मातृकुल सभी प्रकार के परिवारों में ये विशेषताएँ सामान्य रूप से पाई जा सकती हैं।

अब बात आती है नारी जागरण और आंदोलन की। इसके भी अलग-अलग चरण हैं और स्थितियों की जटिलता को देखते हुए हमें इसका संवेदनशील तरीके से मूल्यांकन करना होगा। भारत में स्त्री का अस्तित्ववादी संघर्ष बहुत पुराना है। बौद्धकाल से लेकर वैदिक काल और मध्यकाल तक इसके अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा, लोपा, अनेक थेरियों सहित सारन्धा, अहिल्याबाई से लेकर रज़िया सुल्तान तक हम एक परंपरा देख सकते हैं कि स्त्रियों ने सोच और सत्ता दोनों ही स्तरों पर संघर्ष किया। मीराबाई, अक्क महादेवी, ललद्यद, जनाबाई और बहिणाबाई दर्जनों नाम हैं। लेकिन दुर्भाग्य से भारत में इन सबके द्वारा उठाए गए प्रश्नों को जोड़कर स्त्री मुक्ति का एक वृहद पाठ तैयार नहीं किया जा सका इसलिए लिंगभेद के खिलाफ भारत में संघर्ष की परंपरा को बल न मिल सका। जबकि भारत में नारी जागरण का इतिहास बहुत पुराना है।

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में नारी आंदोलन की चिनगारियाँ पूरे विश्व में सुलगती दिखाई दीं। अरब और इस्लामिक देशों में सुन्नत की प्रथा के खिलाफ़, चीन में पैरों को बाँधकर छोटा रखने की प्रथा के खिलाफ़, पश्चिमी देशों में नारी अधिकारों को लेकर- किस देश में आंदोलन नहीं हुए। भारत में अशिक्षा की मार थी। जागरूकता अब स्त्रियों के हर मोर्चे पर आई है। स्त्रियों में बदलाव आया पर इस बदलाव के लिए हमारा समाज तैयार नहीं है। उन्होंने घर की चहारदीवारी के साथ अर्थ उपार्जन में भी हाथ बँटाया पर यह दोहरी ज़िम्मेदारी भी उसे अपना सम्मान दिलाने में नाकाम रही। दिक्कत यह है कि स्त्री की दशा में सुधार, समाज और पुरुषों की मानसिकता को बदले बिना नहीं हो सकता और समाज पुरुष सत्तात्मक है और आंदोलनकारी स्त्रियों की जमात को पीछे धकेलने में पुरुषों का ही नहीं, पुरुष सोच वाली महिलाओं का भी बहुत बड़ा हाथ है। यह एक अलग मुद्दा है।

दामिनी के बलात्कार के खिलाफ़ आंदोलन के

बाद बलात्कार और भी बढ़ गए, यह सच नहीं है। बलात्कार के मामले, जिन्हें पहले दबा दिया जाता था; क्योंकि इसे लड़की के चरित्र पर धब्बे (या बलात्कार के हादसे के बाद उसका ज़िन्दा लाश में तब्दील हो जाने) की तरह लिया जाता था, अब मामले खुलकर सामने आ रहे हैं। माता-पिता इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाते हैं। अब इसे परिवार के लिए शर्मिंदगी के रूप में नहीं देखा जाता। दामिनी कांड के बाद कितने ऐसे खुलासे हुए जहाँ लड़कियाँ अपने परिवार के सदस्यों से यौन शोषण का शिकार हो रही थीं और दहशत के कारण चुप थीं। बलात्कार के आँकड़े बढ़ने के पीछे एक बड़ा कारण तेज़ी से फैलता पोर्न व्यवसाय है। पिछले दिनों पाँच साल की लड़की के बलात्कारी को जब पकड़ा गया तो उसके मोबाइल पर दस पोर्न फिल्में पाई गईं पहले समाज में सेक्स भावना इस तरह बीहड़ और अनियंत्रित नहीं थी।

आज रचनात्मक लेखन के साथ वैचारिक लेखन एक अनिवार्य दायित्व है। सामाजिक ज़िम्मेदारी के तहत, स्त्री की अस्मिता और अधिकारों को लेकर हर विधा में दखल की ज़रूरत है।

लड़कियों पर छेड़छाड़ और उन पर तेज़ाबी हमले के मामले बहुत बढ़ते ही जा रहे हैं, इसकी जड़ें कहाँ तलाशती हैं आप?

आज हम संक्रमण के दौर से गुज़र रहे हैं। परंपरा और रूढ़ियों को तोड़ कर समाज आगे बढ़ रहा है पर बदलाव को स्वीकार नहीं पा रहा। आप देखें कि आज पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश में एसिड अटैक किस सीमा तक बढ़ गए हैं। सहशिक्षा बढ़ने और जीवन शैली में आधुनिकता का बोलबाला होने के साथ ही हम देख रहे हैं कि आम लड़कियों में जहाँ अपने जीवन और उसके निर्णयों के प्रति जागरूकता और बढ़ी है, उसके ठीक समानान्तर लड़कों में उनके वजूद को लेकर एक नकार की भावना पनप रही है। आज जहाँ लड़कियाँ हर क्षेत्र में अपनी योग्यता का परचम लहरा रही हैं वहीं लड़कों के मन में उनके प्रति असहिष्णुता और दुर्भावना का एक अनुत्तरित भंडार है। लड़कियाँ कैरियर, प्रेम और शादी जैसे मसले पर स्वयं निर्णय लेने और नापसंदगी को ज़ाहिर करने में अपनी झिझक से बाहर आ रही हैं और लड़कों को उनका यही रवैया सबसे नागवार गुजर रहा है। पच्चीस-तीस साल पहले तक ऐसे अटैक लड़कियों पर नहीं हुआ करते थे, फिर आज यह अराजक स्थिति क्यों पैदा हो गई है? क्योंकि लड़कों को लड़कियों से ''ना '' सुनने की आदत नहीं है। यह असहिष्णुता से उपजा प्रतिकार है, हिंसा है। लड़की होकर इनकार करने की हिम्मत कैसे हुई उसकी? इसे प्रेम निवेदन या सेक्स निवेदन करने वाला लड़का या किसी भी उम्र का मर्द अपनी हेठी समझता है और प्रतिहिंसा के लिए उतावला हो उठता है।

आपने कई बार लिखा है कि '' जब तक मैं एक महिला सलाहकार केंद्र 'हेल्प' से नही जुड़ी थी तब तक मेरा विचार था कि शिक्षा और आत्मनिर्भरता महिलाओं के बेहतर स्थिति का द्वार खोल देते हैं। लेकिन जब इस संस्था से जुड़ी तो देखा कि, यहाँ ज्यादातर ऐसी औरतें आतीं हैं जो शादी के पहले अच्छी-खासी नौकरी करती थीं, पारिवारिक दबाव के चलते जिन्होंने नौकरी छोड़ दी और ऐसी नौकरीपेशा औरतें भी कम नहीं थीं, जो महीने के आखीर में अपनी तनख्वाह का पूरा पैकेट अपने पति या सास के हाथ में थमा देतीं और फिर हमेशा अपने खर्च के लिए हाथ फैलाती रहतीं।'' क्या आज का विमर्श दो भागों में नहीं बँटा हुआ। एक अशिक्षित नारी को उसके अधिकारों के प्रति शिक्षित करने का और दूसरा शिक्षिता में खो चुके आत्मविश्वास को जगाने का। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होते हुए भी पितृसत्ता के दबाब में उसे खो चुकी होती है। आज २१ वी सदी में भी स्त्री आत्मनिर्भर होने के बावजूद आत्मनिर्णय लेने की स्थिति में नहीं पहुँच पाई है। इसका मूल कारण क्या है? नारीवादी कथाकार और सोशल एक्टिविस्ट होने के नाते आप की क्या राय है?

अधिकारों के प्रति शिक्षित करना, बेटियों को भावनात्मक संरक्षण देना, आत्मविश्वास जगाना, हौंसले को टूटने न देना -बहुत से फ्रंट हैं जिसपर हमें काम करना है। पूरी लड़ाई तो पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना से है। तराजू का एक पलड़ा झुक जाए और दूसरा अपनी ही जगह अड़ा रहे तो संतुलन कैसे बनेगा? स्त्री की शारीरिक बनावट और भावनात्मक संवेदना का पक्ष उसे बहुत व्यावहारिक और सख्त होने नहीं देता इसलिए वे वल्नरेबल हैं और अपने भीतर की कोमलता का शिकार हो जाती हैं,पर पूरे विश्व में पृथ्वी पर सौन्दर्य और कोमलता अगर बची हुई है तो स्त्रियों के माध्यम से। परिस्थितियाँ उन्हें मुश्किलों से निबटने के लिये क्रूर और भौतिकतावादी होने को उकसा रही हैं। स्त्रियाँ इन विकट परिस्थितियों से कितना जूझ पाएँगी, कितना अपने भीतर की स्त्री को बचाकर रख पाएँगी, यह तो समय ही बताएगा। दाम्पत्य में टूटन और दम्पतियों में अलगाव का अनुपात बहुत बढ़ गया है। फिलहाल तो वे दाम्पत्य में तालमेल बिठाने के इस संकट से जूझ रही हैं। इन स्थितियों को अपनी तरह से साधती एक अलग किस्म की पुरुषवादी जमात भी खड़ी हो रही है, जिसका फलना-फूलना पनपना पुरुषों के हक में कतई नहीं; क्योंकि पुरुष को अपना सामंजस्य बिठाने के लिये आखिर कोमलता और संवेदना की ही ज़रूरत होगी, स्त्री में जगते एक पुरुष की नहीं। पुरुष तो स्त्री कभी बन नहीं सकता पर स्त्री का पुरुष बन जाना और ज्यादा खतरनाक है। प्रेमचंद के शब्दों में कहूँ तो पुरुष के भीतर स्त्री के गुण आ जाएँ तो वह महान् हो जाता है लेकिन स्त्री के भीतर पुरुष के गुण आ जाएँ तो वह कुलटा हो जाती है। यह एक संतुलित समाज के हक में नहीं है।

आजकल स्त्री-विमर्श के सन्दर्भ में यह भी कहा जाने लगा है कि यह 'देहवादी' विमर्श बनकर रह गया है। और यह भी कि लेखिकाएँ मात्र 'यौन-मुक्ति' की ही बात कर रहीं हैं? आप इस सन्दर्भ में क्या कहना चाहेंगी?

पितृसत्ता और अर्थसत्ता से मुक्ति और विचार की आज़ादी के बिना, देह की मुक्ति का अर्थ केवल विचलन और मृत्यु है। जब स्त्री विमर्श शब्दकोश में सो रहा था, तब बग़ैर नारों और नगाड़ों के स्त्रियों के हक़ में ज़्यादा महत्त्वपूर्ण रचना लिखी गयीं। आज विमर्श का जिन्न बोतल से बाहर आ गया है और हड़कंप मचा रहा है। महिला रचनाकारों की एक बड़ी जमात बिना किसी सरोकार और प्रतिबद्धता के स्त्री-विमर्श कर रही है और साहित्य के पन्नों पर कहानी और कविता के नाम पर रसरंजक साहित्य परोस रही है। दरअसल वह यौन मुक्ति की जगह यौन उन्मुक्ति या उन्मुक्तता का बयान कर रही है, जिसे सामाजिक या सांस्कृतिक रूप से सही नहीं कहा जा सकता। इसकी एक अलग ही राजनीति

है। यह एक अलग किस्म का एंटी क्लाइमेक्स है। एक ओर सदियों से चली आ रही दासता झेलने को अभिशप्त स्त्री, दूसरी ओर अपनी देह को दाँव पर लगाते हुए पुरुष की शतरंजी बिसात पर उसके ही मोहरों और उसकी ही चालों से उसे नेस्तनाबूद करती जमात। एक गुलामी को तोड़ने के लिए सिर्फ जगह बदल लेना और गुलाम का शोषक की भूमिका में उतर आना कोई समाधान नहीं हो सकता।

पिछले कई वर्षों से हम कुछेक साहित्यिक पत्रिकाओं के पृष्ठों पर, जिस स्त्री -विमर्श का मानचित्र देख रहे हैं, दरअसल वह वित्तीय-पूँजी के दौर में, नए ढंग से उपनिवेशीकृत किये जा रहे मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों और संपादकों की उन मनोग्रंथियों के विकार से बन रहा है, जो समाज की हर स्त्री को 'उन्मुक्त' आकाश देकर लगभग 'पोर्न' स्टार बना देने के लिए आतुर है। बढ़-चढ़कर लिखे गए यौन वृत्तान्तों को श्रेष्ठ और सफल लेखन का दर्जा दिया जा रहा है और धीरे-धीरे यह भ्रम पैदा किया जा रहा है कि व्यभिचार का निर्बाध-प्रवाह, सामाजिक संरचना के परम्परागत, पितृ सत्तात्मक ढाँचे में बारूद का काम करेगा। अन्तत: वह बारूद का काम साहित्य की सामाजिकता और प्रतिबद्धता के रेशे उड़ाने में ही करता है। यौन वृत्तान्त, चाहे कितनी कलात्मकता से लिखा गया हो, अगर दाम्पत्य के किसी अनिवार्य सूत्र या कोण को नहीं दर्शाता और सिर्फ सनसनी या उत्तेजना के तहत लिखा जाता है तो वह पोर्न है और आज के समय में उसकी उपस्थिति साहित्य के नकारात्मक खाने में दर्ज होती है। परिवार और निजी संपत्ति के बने-बनाये ढांचे को तोड़े बिना और हिंसा और यातना को पहचान कर प्रतिकार किये बिना, स्त्रियों का जीवन नहीं बदलेगा। आज के समय में रचनात्मक लेखन इस विषय पर ज़रूरी है या शयनकक्ष के व्योरों का चटखारे लेता बयान जो हमारे समाज के दो प्रतिशत पाठकों की समस्या भी नहीं है।

स्त्री मुक्ति के विचारक 'सेक्स' और 'जेण्डर' को एक नहीं मानते। वे स्त्री मुक्ति तहत 'जेण्डर'; से मुक्ति के पक्षधर हैं। आपकी क्या राय है?

यौन शोषण और घरेलू हिंसा पर हमेशा हम बात करते हैं पर मुख्य मुद्दा लैंगिक शोषण ही है जिस पर उँगली नहीं उठाई जाती ;क्योंकि यह हर एक घर की समस्या है -निचले तबके का हो या

यौन वृत्तान्त, चाहे कितनी कलात्मकता से लिखा गया हो, अगर दाम्पत्य के किसी अनिवार्य सूत्र या कोण को नहीं दर्शाता और सिर्फ सनसनी या उत्तेजना के तहत लिखा जाता है तो वह पोर्न है और आज के समय में उसकी उपस्थिति साहित्य के नकारात्मक खाने में दर्ज होती है।

पढ़ा लिखा, गरीब हो या संभ्रांत। हर जगह स्त्री को एक कमज़ोर इकाई मानकर उससे मनमाना सुलूक किया जाता है। अधिकतर घरों में उसे न पिता की संपत्ति पर हक मिलता है, न पति के घर में इंसान का दर्जा। वह कम से कम पैसों में घर चलाती है, जो मिलता है, उसमें से भी बचाकर रखती है। घर खरीदना हो तो अपना स्त्री धन, जेवर निकाल कर थमा देती है फिर भी घर की मालिक वह नहीं होती। उसके चौबीसों घंटों के काम का कोई मुआवज़ा नहीं है; क्योंकि उसे श्रम का दर्जा न देकर कर्त्तव्य के खाते में दर्ज किया जाता है। किसी ज़रूरी मामले में उसकी सलाह नहीं ली जाती। वह पढ़ी-लिखी हो, आत्मनिर्भर हो तो भी पति, सास, ननद की प्रताड़ना का शिकार होती है। उसे शुरू से ही घर में एक घुसपैठिये का दर्जा दिया जाता है। यौन शोषण से निबटने के लिए पहले लैंगिक शोषण की पहचान करनी होगी; जिसकी नींव पर यह समाज बाहर से दिखती खुशहाली पर टिका हुआ है, जबकि स्त्री संबंधी सारी समस्याओं की जड़ लैंगिक वर्चस्व और अन्तत: शोषण है। इसकी पहचान के बगैर शोषण और हिंसा की दिशा में कदम बढ़ाना वैसा ही है जैसे ख़राब जड़ को नजरअंदाज कर आप सूखती शाखाओं और मुरझाए पत्तों का इलाज करते रहें।

विकासनारायण राय के शब्दों में -' यौनिक हिंसा की भयावहता और व्यापकता तो फिर भी आँकरों में समेटी जा सकती है, पर लैंगिक हिंसा में तो लगभग शत प्रतिशत मर्द और पुरुषप्रधान सामाजिक संरचना शामिल है। दरअसल लैंगिक अभय से भरे मर्द के लिए लैंगिक हिंसा से यौनिक हिंसा पर पहुँचने में एक पतली सी मनोवैज्ञानिक रेखा ही पार करने को रह जाती है। हर मर्द संभावित यौन अपराधी है और हर औरत संभावित यौन शिकार।'

सख्त से सख्त कानून और अपराधी को मौत की सज़ा भी हमारे देश की समस्याओं का समाधान नहीं है। आवश्कता इस बात की है कि बेटों को लिंग वर्चस्व का पाठ पढ़ाने की बजाय बचपन से ही इतर लिंग की बराबरी और लड़कियों को सम्मान देने का पाठ जन्मघुट्टी में घोलकर पिला दिया जाए।

भारतीय स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में क्या बदलाव आया है? कितनी जागरूकता और कितनी आज़ादी? वैश्विक परिदृश्य में स्त्रियों की स्थिति में भारतीय स्त्रियों की तुलना में क्या समानता या विभेद है?

अपने समाज में अपनी तरह से असमानता तो विश्व भर में है चाहे वह आधुनिक समाज हो या परंपरावादी। आज से करीब डेढ़ सौ साल पहले की भारतीय स्त्रियों को अपनी सामाजिक स्थिति और अपनी यातना की पहचान ही नहीं थी। अपने घर की चहारदीवारी की परेशानियों से बिला शिकायत जूझना उनकी मजबूरी थी और उन्हें यथासंभव सँवार कर चलना उनका स्वभाव। घर से बाहर उनकी गति नहीं थी इसलिए जहाँ, जितना, जैसा मिला, सब शिरोधार्य था। सहनशीलता और त्याग उनके आभूषण थे। अगर सम्मान मिला तो अहोभाग्य, दुत्कार मिली तो नियति; क्योंकि अपने जीवन से एक स्त्री की अपेक्षाएँ कुछ थी ही नहीं। एक मध्यवर्ग की स्त्री अगर प्रतिभावान और रचनात्मक हुई तो वह रसोई और बच्चों की देखभाल के बाद दोपहर के बचे हुए समय में, घर के फेंके जाने वाले सामान से चित्रकला या क्रोशिए से बार्डर या कवर बिनतीं, साड़ियाँ, चादरें और तकिया गिलाफ़ काढ़तीं -इस तरह अपना पूरा समय वे घर की चहारदीवारी के भीतर के स्पेस को सजाने-सँवारने-निखारने में बिता देतीं।

अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता, अपने घरेलू श्रम को कम करके आँकना, बचपन में विवाह, विधवा हो जाने पर सामान्य जीवन जीने पर अंकुश आदि ऐसी कुरीतियाँ थीं; जिसके चलते उन्हें शिक्षित करना उस कालखंड की अनिवार्यता बन गई। स्त्री शिक्षित हुई। जागरूक होना स्वाभाविक था। लेकिन बाहरी स्पेस में उनका काम स्कूल में अध्यापन करने तक ही सीमित रहा। शिक्षा के बाद की दूसरी सीढ़ी आई, उन्हें आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया गया और शिक्षण से आगे, बैंकों में, सरकारी दफ्तरों में, कारपोरेट जगत में और अन्य सभी क्षेत्रों में स्त्रियों ने दखल देना शुरू किया। आर्थिक रूप से हर समय अपना भिक्षापात्र पति के आगे फैलाने वाली स्त्री ने घर को चलाने में अपना आर्थिक योगदान भी दिया। पर इससे उसके घरेलू श्रम में कोई कटौती नहीं हुई। इस दोहरी ज़िम्मेदारी को भी उसने बखूबी निभाया। माना कि भारतीय समाज में वैवाहिक सम्बन्धों में बेहतरी के लिए समीकरण बदले हैं, पर यह सब स्त्रियों के एक बहुत छोटे से वर्ग के लिए ही है –जहाँ पुरुषों में कुछ सकारात्मक बदलाव आए हैं। मध्यवर्गीय स्त्री के एक बड़े वर्ग के लिए आज स्थितियाँ पहले से भी बहुत ज़्यादा जटिल होती जा रही हैं।

जहाँ तक पश्चिम या दूसरे विकसित देशों का सवाल है, तो वे कुछ प्रश्नों को हल करने की स्थिति में हैं। वहाँ आर्थिक आत्मनिर्भरता अधिक है और इसलिए सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर स्त्री के प्रति नज़रिये में भी फ़र्क है। कम से कम वहाँ स्त्री पुरुष का उपनिवेश नहीं है।

इसके विपरीत भारत और एशियाई देशों में अभी स्त्रियाँ जाति और धर्म के कारण भी शोषण का शिकार हैं। उनके प्रति सांस्कृतिक रवैया बहुत दूषित है। उन्हें अभी आज़ादी की बहुत सारी सीढ़ियाँ चढ़नी हैं। लेकिन आज स्त्रियाँ जिस तरह प्रतिकार में खड़ी हो रही हैं वह देर–सबेर अपनी ज़मीन बना ही लेंगी। यह उनके समय के आने की आहट है। हमें इस आशावाद में जीने का और सकरात्मक सोच का पूरा हक़ है।

साहित्य के वर्तमान को आप किस तरह से देखती हैं।

किसी भी समय में उस वक्त लिखे जा रहे साहित्य का उसी वक्त मूल्यांकन नहीं होता। उसका सही मूल्यांकन कई दशकों के बाद ही हो पाता है। आज जितने भी लेखक या लेखिकाएँ जो भी लिखते हैं, लेखन के बाद उसको प्रमोट करने में जुट जाते हैं। लेखक–लेखिकाएँ कहानियों को बढ़ाकर उपन्यास बना दे रहे हैं, और वही–वही दस जगह से छपवा रहे हैं। यह सब जोड़तोड़ साहित्य को कहीं न कहीं नुकसान ही पहुँचा रही हैं। ये लेखक और लेखिकाएँ तात्कालिक वाहवाही में यकीन रखते हैं। साहित्य कोई मंच नहीं कि आपने इधर कुछ सुनाया, उधर वाहवाही मिल गई। आपका साहित्य आगे आने वाले पचास साल बाद भी बचा रहे और आपके समय को दर्शाए, तभी उसका महत्व है।

आज के इस माहौल में बदलाव की शुरुआत आप कहाँ से देखती हैं कि जब कहानी पीछे चली गई और चेहरे सामने आ गए।

आज के समय की यह विडम्बना है। जैसे उपभोक्तावाद दूसरी जगहों फिल्मों, मीडिया में है जहाँ वो ब्रेकिंग न्यूज़ पकड़ ही नहीं लेते बल्कि कई बार बना भी लेते हैं तो वही काम साहित्य में भी हो रहा है। चूंकि हमारा वास्ता पिछली पीढ़ी से हैं तो हमें यह अजूबा लगता है, लेकिन आज तो यह होड़ मची हुई है कि कैसे दूसरे को धक्का देकर आगे निकला जाए। जब साहित्य, साहित्य से ज़्यादा लेखक पर केंद्रित हो जाता है तो यह नुकसान तो होता ही है और इस नुकसान को अगर कोई रोक सकता था तो हमारे संपादक। पर क्या कहा जाए, हमारे बुज़ुर्ग संपादक की ही तो ये शुरुआत की हुई है 'हंस' के पन्नों पर ही ये शुरू हुआ था इसलिए मैं हमेशा उनके खिलाफ़ बोलती रही हूँ।

आज के समय में संपादकों का रवैया सही नहीं है। इस वजह से भी लेखन में गिरावट आई है। ऐसी लेखिकाओं की बहुत कमी है जो सचमुच लिखने में यकीन रखती हैं। आज जो नयी लेखिकाएँ लिख रही हैं वो ऐसा नहीं है कि अच्छा लिख नहीं सकतीं लेकिन व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ हमेशा साहित्य का गला ही घोंटती हैं।

आज के दौर की ऐसी वो कौन सी महिला कहानीकार हैं जिनमें आपको समय की धार के साथ और धारदार होने की संभावनाएँ नज़र आती हैं।

आज की लेखिकाओं में मधु कांकरिया ने समाज के ज्वलंत विषयों और प्रश्नों को उठाया है और बाकायदा पूरे शोध के बाद लेखन किया है। उनका हर उपन्यास एक बिल्कुल अलग और प्रासंगिक सवालों पर है। किसी भी लेखक के बरक्स उस लेखन को खड़ा किया जा सकता है। कई महत्त्वपूर्ण लेखिकाएँ हैं जैसे नीलाक्षी सिंह, अल्पना मिश्र, कविता, नीला प्रसाद, वंदना राग, किरण सिंह, स्वाति तिवारी, गीताश्री, जयश्री राय वगैरह ! इंदिरा दांगी की भी कुछ कहानियाँ मुझे अच्छी लगती हैं। लेखिकाओं की जमात ज़ोर–शोर से आ रही है पर उनमें संजीदगी भी होनी चाहिए।

और पुरुष लेखकों में अगर बात करें तो .....

बहुत से युवा अच्छा लिख रहे हैं। जैसे पंकज सुबीर, रामजी यादव, विमलचंद्र पांडे, मनोज पांडे, गौरव सोलंकी, विवेक मिश्र, और चंदन पांडे को पढ़ना मुझे अच्छा लगता है। चन्दन पाण्डेय की शुरूआती कुछ कहानियाँ बहुत अच्छी थीं । उसके बाद चन्दन पाण्डेय की जो कहानी मैंने पढ़ी वो उसने हिंगलिश में लिखी थी। वह कहानी मैं पूरी पढ़ नहीं पाई, क्योंकि उस तरह की भाषा में कहानी पढ़ने की हमें आदत नहीं है। अभी कहानी के नाम पर 'पहल' में चन्दन पाण्डेय का जो बहीखाता आया है, वह शोशेबाजी के अलावा कुछ नहीं। उसको पढ़ने में दिमाग़ क्यों खपाया जाये। विधा में इस तरह की तोड़–फोड आप नहीं कर सकते। कहानी की सबसे पहली ज़रूरत है पठनीयता और जब पठनीयता ही नहीं है तो कहानी कैसी!

अभी हाल–फिलहाल में 'हंस' पत्रिका में आपकी कहानी राग देह मल्हार छपी है। आप हंस पत्रिका और उसके संपादक का हमेशा विरोध करती रही हैं तो उसी पत्रिका में अपनी कहानी छपवाने का कारण ?

उस कहानी को राजेन्द्र जी छापने को कतई तैयार नहीं थे। ऐसी कहानी जिसमें देह का राग नहीं, छापने में उनकी क्या दिलचस्पी होती। बहाना यह था कि यह बहुत लंबी है। उस कहानी में ज़रा खुलासे से देह के राग अलापे जाते तो वह इससे ज्यादा लंबी होती तो भी हंस के पहले पन्नों पर विराजती। मैंने कहा –जब हंस के सोलह पन्नों में शाजी जमां की ''जिस्म जिस्म के लोग'' जैसी कहानी छप सकती है तो फिर इस कहानी की लम्बाई पर आपत्ति क्यों। उनका आग्रह था –कहानी

को छोटा करो। मैंने काफी काट-छाँट की। इस कहानी को मैं 'हंस' में इसलिए छपवाना चाहती थी क्योंकि यह कहानी मैंने उस जमात के खिलाफ लिखी है जिसको हंस के पन्नों पर खड़ा किया गया है और वो जमात 'हंस' पढ़ती है। मैं चाहती थी कि वो पढ़े खैर, राजेन्द्र यादव की इस लोकतांत्रिकता की कायल हूँ मैं ! कोई और होता तो कभी अपने सबसे कट्टर विरोधी की रचना तो नहीं ही छापता। ऐसे तंगदिल संपादक-लेखक भी हैं; जिनकी किसी गलत बात पर उँगली उठा दो तो ताउम्र ऐंठे रहते हैं।

इस वर्ष के विश्व पुस्तक मेले में मधु अरोड़ा द्वारा संपादित 'एक सच यह भी' नामक पुस्तक का लोकार्पण हुआ है, जिसमें पुरुष-विमर्श पर कहानियाँ संकलित हैं। उसी आयोजन में यह प्रश्न उठा था कि उसमें आपकी भी एक कहानी होनी चाहिए। इस विषय में आप का क्या कहना है ?

स्त्री विमर्श से पुरुष-विमर्श को अलग कर नहीं देखा जा सकता। जिन्हें स्त्री विमर्श की ही समझ नहीं, वे पुरुष विमर्श क्या करेंगे। स्त्री होने भर से आपको स्त्रियों का हिमायती नहीं ठहराया जा सकता। मैंने एक बार अक्सर की परिचर्चा में यह लिखा था -अफ़सोस इस बात का है कि स्त्रियों का भी पूरा फोकस इस पुरुष व्यवस्था का हिस्सा बनने में है। साहित्य कितना स्त्री सशक्तीकरण में योगदान दे पाएगा, मालूम नहीं। आखिर बदलाव ज़मीनी तौर पर स्त्रियों के लिए काम करनेवाली कार्यकर्ताओं से ही आएगा। साहित्य के जरिए हम कितना कर पाएँगे, कभी-कभी यह सोच ही निराशा के गर्त में धकेल देती है। आज स्त्रियों के सामने दोहरी लड़ाई है। स्त्रियों की पहली लड़ाई स्त्री देह में पुरुष सोच को पुष्पित पल्लवित करने वाली इन स्त्रियों से ही है, पुरुषों का नम्बर तो दूसरा है !

आज पुरुष-विमर्श और स्त्री-विमर्श से ज़्यादा एक सह विमर्श की ज़रूरत है। सह विमर्श कि कैसे दाम्पत्य और परिवार को बचाया जा सके। क्योंकि परिवार बचेगा तो समाज बचेगा। समाज बचेगा तो देश बचेगा। पुरुष खुद आज समझ नहीं पा रहे हैं कि वो कहाँ जा रहे हैं, किन परिस्थितियों का शिकार हो रहे हैं, किस दुश्चक्र में फँस रहे हैं। राग देह मल्हार इसी की कहानी है। मेरी एक और छोटी सी कहानी 'सता-संवाद' है जिसे पुरुषों की स्थिति पर केंद्रित कह सकते हैं। मधु ने मुझसे कहानी माँगी थी यह कहकर कि कथा यू.के. का आयोजन है। मैंने उस संकलन में अपना सहयोग नहीं दिया।

इधर कविताओं का एक संकलन प्रेमचंद सहजवाला निकाल रहे थे। मेरी कुछ कविताएँ भी थीं उसमें। प्रूफ आए तब तक हंस में उनकी एक कहानी छपी-''अफसोस हम फेसबुक पर बता नहीं पायेंगे।'' ऐसी वाहियात कहानियाँ किसलिए लिखी जाती हैं, क्या बताने के लिए? मुझे वह कहानी इतनी नागवार गुज़री कि मैंने अपना नाम उनके द्वारा संपादित काव्य संकलन से वापस ले लिया ! जिन रचनाकारों के लेखन और सोच से मेरी सहमति नहीं, उनके साथ मैं जुड़ नहीं सकती। ऐसे तथाकथित रचनाकार मुझे संदिग्ध लगते हैं; जिनके कोई सरोकार नहीं और जिन्होंने साहित्य को अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं का अखाड़ा बना रखा है!

आजकल आप कविताएँ भी लिख रही हैं। कहानी लेखन से कविता लेखन की तरफ कैसे मुड़ना हुआ ?

बस, जैसे नारीवादी होना मेरा चुनाव नहीं है वैसे ही कविता विधा में घुसपैठ करने की मेरी मंशा कभी नहीं रही। कोई भी रचनाकार गद्य लेखन करता हो पर कविता ज़रूर उसके अंदर बहती है। हर रचनाकार की तरह मेरी भी शुरुआत कविता लेखन से हुई लेकिन मैंने उन कविताओं को डायरी के पन्नों तक ही कैद रखा, १९९५ में नयना साहनी के तंदूर कांड ने मुझे भीतर तक इस कदर झकझोर दिया कि मैंने एक लंबी कवितानुमा रचना ''शब्द, और सिर्फ़ शब्द..... और महिलाओं के बीच सुनाने के बाद उसे कहानी में तब्दील तो कर दिया पर अंदर से संतुष्टि नहीं मिली।

कहानी लेखन की तरह कविता लेखन की विधिवत् शुरुआत भी एक हादसे के तहत हुई। पिछले साल जब मेरे कंधे जकड़ गए और लिखना मुश्किल होता गया तो मैं पशोपेश में पड़ गई। विचारों का अंधड़ दिमाग की शिराओं को ध्वस्त कर रहा था और उँगलियाँ साथ नहीं दे रही थीं। एक समय ऐसा आता है जब लेखन कर्म, खाने, पीने और जीने से भी ज़्यादा ज़रूरी लगने लगता है। मेरी सबसे पहली कविता गद्यांशों में छिपे टुकड़ों से ही निकली। फिर भी कविता का सही मुहावरा मेरे पास नहीं है। कविता के नाम पर जो मैंने लिखा है, दरअसल वह कविता नहीं है, यह मैं भी जानती हूँ। पर मैंने मंच पर जब-जब इन रचनाओं को सुनाया तो इन्हें बहुत पसंद किया गया। अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। मैं मूलत: गद्य लेखक ही हूँ, पर आक्रोश और आँसू कई बार कविता की छोटी सी मुट्ठी में जल्दी समा जाते हैं। कविता लेखन गद्य की तरह श्रमसाध्य विधा नहीं है इसलिए कविता, मेरे संदर्भ में 'तथाकथित' कविता लेखन, संतुष्ट करता है इसलिये लिख लेती हूँ।

आपको प्रवासी साहित्यकारों में किन लेखक-लेखिकाओं को पढ़ना भाता है ?

मैंने पहले ज़्यादा प्रवासी साहित्य नहीं पढ़ा था लेकिन पिछले वर्ष जून-जुलाई की अमेरिका यात्रा के दौरान प्रवासी साहित्य को अच्छे से पढ़ा। जिसमें मुझे अनिल प्रभा कुमार, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, सुधा ओम ढींगरा, इला प्रसाद, दिव्या माथुर, अर्चना पेन्यूली की कहानियाँ बहुत पसंद आईं वे बहुत अच्छा लिख रही हैं और इनको प्रवासी का टैग लगने से बिलकुल परहेज़ नहीं करना चाहिए, जैसे हमें परहेज़ नहीं करना चाहिए कि महिला रचनाकार का टैग हमारे ऊपर लगा है। हम महिला हैं तो महिला कथाकार ही कहलाएँगी क्योंकि हम महिलाओं की संवेदना से महिलाओं की समस्याओं और त्रासदी को बेहतर ढंग से समझ और लिख सकती हैं, ठीक उसी तरह वे प्रवासी हैं। प्रवासियों की समस्याएँ अलग हैं, उनका दृष्टिकोण अलग है। उन्होंने यहाँ से विस्थापित हो कर वहाँ बसने की जो तकलीफ़ झेली है वो हम तो महसूस नहीं कर सकते और उस तकलीफ को वो प्रामाणिकता से व्यक्त कर रही हैं।

'हिन्दी चेतना' के लिए आपका सन्देश।

विदेश में हिन्दी भाषियों के लिए अगर कोई भी काम हो रहा है तो वह उसे सकारात्मक दिशा में ही ले जाएगा। हिन्दी भाषा विश्व में अगर बचेगी तो अपनी भाषा के इन्हीं प्रेमियों के कारण बची रहेगी; जो एक जुनून के तहत भाषा को बचाने के प्रयास में जुटे हुए हैं। इसके लिए 'हिन्दी चेतना' बधाई की हकदार है। 'हिन्दी चेतना' के लिए बहुत सारी शुभकामनाएँ और अपनी हमनाम सुधा ओम ढींगरा जी को हार्दिक बधाई !

*

कहानी

किसलिए

अनिलप्रभा कुमार

शाम की रात में ढलने की तैयारी लगभग पूरी हो चुकी थी। पेड़ों के ख़ाली लम्बे ठूँठ और उनके बीच से झाँकता आकाश, बेशुमार रंग- लगातार बदलते हुए। साँवले बादलों के पीछे अब बस एक हल्की सी लालिमा का आभास भर रह गया। उसको रेखांकित करती आखिरी किरण भी अलविदा माँग रही थी। वह यूँ ही खड़े सूर्यास्त देखते रहते। दिन का रात में ढल जाना उन्हें मंत्र-मुग्ध करता। देखते -देखते एक हल्की सी साँस उनके सीने से निकल जाती। कुछ सोच कर नहीं, बस यूँ ही।

ध्यान आया, आज वह कुछ ज़्यादा ही देर लगा रहा है। एकदम आवाज़ लगाई -'पेपे, पेपे'

कोई हलचल नहीं हुई। सोचा, इस वक्त तो बाहर कोई चिड़िया या गिलहरी भी नहीं कि उनके पीछे भागता हो।

वह हल्के अँधेरे में नज़र दौड़ाते आगे बढ़े। ताली बजाई। उसका नाम लेकर फिर आवाज़ लगाई। पतझड़ के सूखे पत्तों की चरमराहट सुनाई दी। सफ़ेद ऊन का गोला उन्हीं की ओर छूट कर भागा आ रहा था। वहीं वह पैरों के बल बैठ गए। दोनों बाँहें फैला दीं। पूरी गति से भागता पेपे उनकी बाँहों के घेरे में आ गया - लगातार पूँछ हिलाता हुआ। छोटी सी जीभ निकाल कर उनके हाथों- बाँहों को चाटता हुआ। उन्होंने उसे कंधों से पकड़ लिया - 'शैतान!' पेपे ने उनका मुँह भी चाट लिया।

सफ़ेद फ्राक पहने, यूँ ही भागती ईशा को भी जब वह अपने दोनों बाँहों के घेरे में थाम लेते थे तो वह भी यूँ ही मुँह पर किस्सी देकर खिलखिलाती थी। वह डाँटना भूल जाते थे। अब भी भूल गए।

घर के पीछे का दरवाज़ा खोला। लाँड्री - रूम से होकर वह घर के अन्दर दाख़िल हुए। पेपे दरवाज़े से अन्दर आते ही ठिठक गया। टोकरी से पुराना धुला तौलिया उठा कर वह झुके। पेपे ने पंजा आगे कर दिया। धीरे- धीरे उन्होंने उसके चारों पैर पोंछे। खीझे भी कि बानी ने यह एक और काम बढ़ा दिया।

पेपे बेसब्री से इधर-उधर दौड़ने लगा।

'रुको बाबा, देता हूँ अभी।' उन्होंने रसोई के अन्दर ही फ़र्श पर रखे दोनों कटोरों में खाना और पानी भरा। पेपे खाने की ओर लपका।

'नो' उन्होंने कड़ी आवाज़ में कहा। बेचारा वहीं का वहीं रुक गया। उनकी ओर काली बंटे जैसी आँखें उठाए इंतज़ार करता रहा कि कब वह इज़ाज़त दें तो वह खाने में मुँह मारे।

पेपे की आँखों में पता नहीं कहाँ वह खो गए कि पेपे ने धीरे से पंजे से उन की टाँग को छुआ।

'ओ.के' उन्होंने इज़ाज़त दे दी। पेपे का छोटा सा सिर, खाने के उस बड़े से कटोरे में तेज़ी से चलने लगा।

वह चुपचाप जाकर पास पड़ी कुरसी पर बैठ गए।

उनके यूँ 'हाँ' या 'ना' कहने को कभी किसी ने इतना महत्त्व नहीं दिया।

'ईशु नहीं जाना इतनी रात गए पार्टी में।'

'ईशु नहीं चलानी गाड़ी अभी।'

'क्यों?' ईशा हमेशा पलट कर सवाल करती।

'क्योंकि तुम्हें अभी ज़्यादा अनुभव नहीं। गाड़ी की तो छोड़ो, कहीं तुम्हें चोट लग गई तो? और भी बुरा अगर किसी और को मार दिया तो बस फिर सब कुछ गया।'

'आप तो वहमी हैं, बस मुझे बाँध कर रखना चाहते हैं।'

ईशा गाड़ी लेकर चली जाती। बानी बस चुप्पी लगा लेती। वह इधर से उधर कमरे में चहल-क़दमी करते रहते।

'तुम उसे समझाती क्यों नहीं?' वह बानी पर ग़ुस्सा होते।

'आप जो समझाते हैं। कुछ बस चलता है? मैं कुछ बोलूँगी तो दो-चार और सुन लूंगी।'

'तुमने बिगाड़ रखा है लाड़ में।' उनका ग़ुस्सा दम तोड़ देता। बानी बस चुप। फिर कहती-

'क्यूँ अपना ब्लड -प्रैशर बढ़ा रहे हो? सब भगवान पर छोड़ दो और जाकर सो जाओ। कल हमें काम पर भी तो जाना है।'

अनिल प्रभा कुमार

जन्म: दिल्ली, भारत

शिक्षा : 'हिन्दी के सामाजिक नाटकों में युगबोध' विषय पर शोध।

प्रकाशित कृतियाँ : 'बहता पानी' कहानी संग्रह और 'उजाले की क़सम' कविता-संग्रह (प्रकाशनाधीन)। न्यूयॉर्क के स्थानीय दूरदर्शन पर कहानियों का निरन्तर प्रसारण। हंस, अन्यथा, कथादेश, वागर्थ, परिकथा, आधारशिला, हिन्दी चेतना, गर्भनाल, लमही, शोध-दिशा और वर्त्तमान- साहित्य आदि पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

पुरस्कार व सम्मान : 'ज्ञानोदय' के नई कलम विशेषांक में 'खाली दायरे' कहानी पर प्रथम पुरस्कार ।

'अभिव्यक्ति' के कथा-महोत्सव 2008 में 'फिर से' कहानी पुरस्कृत।

संप्रति : विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यू-जर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य का प्राध्यापन। स्वतंत्र लेखन।

पता:

119 ओसेज रोड, वेन, न्यू- जर्सी

07470 यूएसए ।

ई-मेल:

aksk414@hotmail.com

दोनों चुपचाप लेटे करवटें बदलते रहते जब तक गई रात गैराज के खुलने और फिर बन्द होने की आवाज़ न आ जाती।

अब उन्हें आवाज़ों का इन्तज़ार नहीं रहता। सिर्फ बृहस्पति वार की शाम को बानी लौटती है। सोमवार तड़के फिर काम पर लौट जाती है। वह हँसती है – 'हमारी वीकएंड मैरिज है, झगड़े कम होते हैं। हमारा सम्बन्ध देर तक टिकेगा।'

वह चुप ही रहते हैं, कोई प्रतिक्रिया नहीं।

अब तो वह हर वक्त घर पर ही रहते हैं। उनकी कम्पनी में छँटनी हो रही थी। ज़्यादा विकल्प थे नहीं। सो ले लिया जल्दी अवकाश। बानी डेढ़ सौ किलोमीटर दूर पढ़ाती थी – सिर्फ़ वीक- एंड को घर आती। ईशा तो हाई स्कूल के बाद से ही बाहर की होकर रह गई। कॉलेज में हॉस्टल में थी। फिर नौकरी करने लगी तो सहेलियों के साथ मिलकर एक घर किराए पर ले लिया। अब अपनी मन-मर्ज़ी मुताबिक शादी भी कर ली तो माइक के तबादले के साथ ही वह भी दूसरे शहर में जाकर रहने लगी है।

पेपे उसी का कुत्ता है। उसी ने यह नाम दिया – पेपे, स्पेन के एक संत के नाम पर। सहेलियों के साथ जिस अपॉर्टमेंट में रह रही थी, उस बिल्डिंग में कुत्ते रखने की मनाही थी। मिन्नत सी करती हुई बोली थी – 'डैडी प्लीज़ मेरे पेपे का ख़्याल रखना।'

तब वह भीतर से कुढ़े थे। अवकाश प्राप्त हूँ न तो इसलिए बेकार हूँ । तुम्हारे कुत्ते की बेबी-सिटिंग से बढ़ कर मेरे पास और कोई काम ही नहीं है न। पर मुँह से कुछ नहीं बोले।

''डैडी ज्यों ही मौका मिलेगा मैं इसे अपने पास ले जाऊंगी।'

पिछले पाँच साल से तो मौका मिला नहीं। हाँ फ़ोन पर ज़रूर पेपे का हाल पूछती। उसके जन्मदिन पर एक पकेट भी भेजती – कुत्ते के बिस्कुटों और खिलौनों का। अभी भी पेपे उसी का डॉगी था।

बानी काम पर और ईशा दूसरे शहर में।

पेपे उनके पीछे हर वक्त लगा रहता। हर वक्त यह छोटा सा सफ़ेद ऊन का गोला उन्हें व्यस्त रखता। सुबह नींद खुलती तो पेपे उनकी चादर खींच रहा होता। वह हड़बड़ाकर उठते और उसके लिए बाहर का दरवाज़ा खोल देते। लौटता तो उसके लिए कटोरों में खाना और ताज़ा पानी भरते।

अब उन्हें आवाज़ों का इन्तज़ार नहीं रहता। सिर्फ बृहस्पति वार की शाम को बानी लौटती है। सोमवार तड़के फिर काम पर लौट जाती है।

पेपे इस लपक और उतावलेपन के साथ खाता कि शायद फिर कभी खाने को मिले या न मिले। ईशा का शायद चौथा या पाँचवा जन्म दिन था। वह उसे एक ख़ास आईस – क्रीम की दुकान पर ले गए। वह भी यूँ ही हुमक- हुमक कर निगल रही थी।

'बेटे, धीरे खाओ।' उन्होंने प्यार से कहा था

'नहीं, आज तो मेरा जन्मदिन है। मैं जितनी चाहूँ खा सकती हूँ। कल तो आप मुझे यहाँ लाएंगे नहीं।'

वह निरुत्तर हो गए।

वह अख़बार पढ़ते, साथ ही चाय के घूँट भरते रहते। पेपे टोस्ट की ख़ुशबू से परेशान आगे -पीछे घूमता। वह छोटा सा टुकड़ा उसकी ओर फेंकते, वह हवा में उछल कर लपक लेता। आधा टोस्ट पेपे के पेट में जाता और आधा उनके। ईशा ने मना किया था कि उसे डॉग -फ़ूड के अलावा और कुछ नहीं देना। पर पेपे ऐसे टुकुर -टुकुर उन्हें देखता कि बस उनसे रहा नहीं जाता। छोटा सा टुकड़ा फेंक ही देते। खाकर पेपे की नज़रें फिर टुकुर -टुकुर।

'यार, खाने भी दे ना। मैं कोई तेरा खाना खाता हूँ?'

पेपे बड़े अन्दाज़ से सिर हिला देता। जिसका कुछ भी मतलब हो सकता था।

खाना खाकर वह लेट जाते। टेलीविज़न पर ख़बरें देखते। पेपे पास बैठ कर खिलौने की हड्डी को चबाता रहता। सोचते, बानी यूँ ही उन के पास बैठ कर अगर स्वेटर बुना करती तो कैसा लगता? इस मीठे से ख़याल का बुलबुला उठता और बैठ जाता। ऐसा कभी हुआ नहीं, न ही होगा।

उठ बैठते। 'चल बेटे थोड़ा घूम आएँ ।' पेपे घूमने के लिए हमेशा तैयार! वह उसके कॉलर में पट्टा फंसाते, रास्ते के लिए दो प्लास्टिक के थैले भी उठा लेते। बानी के कभी-कभी घर पर न होने पर, शिशु ईशा के डॉयपर्स बदलने का उन्हें अच्छा अभ्यास था।

यह सैर भी एक खेल ही थी। पेपे दौड़ कर आगे बढ़ जाता, फिर पीछे मुड़ कर देखता। राह चलता कोई और कुत्ता या गिलहरी दिख जाती तो झपटता उस पर। वह हाथ के पट्टे को झटका देते और पेपे वहीं रुक जाता।

'गुड बॉय' वह शाबाशी देते।

सोचते, यूँ किसी को उनके नियंत्रण में रहने की ज़रूरत नहीं। सभी आज़ाद रहें – वह यही चाहते हैं। फिर भी चाहा था कि उमर की सीढ़ियाँ वह बानी के साथ इकट्ठे चढ़ते। चढ़ तो रहे थे मगर अलग-अलग। फिर यह जानवर क्यों उनसे बँधा है? वह सोचते, जवाब नहीं मिलता, पर अच्छा लगता।

पेपे मेज़ से टकरा गया। उन्होंने गोदी में उठा कर पुचकारा। पंजे सहला दिए। पिछले दो-तीन दिन से वह बिना वजह ही ठोकरें खा रहा था। बच्चे की तरह उठा कर उसे अपने चेहरे के सामने कर लिया – छोटी सी ईशा। पल भर ठिठके रहे। झटके से पेपे को नीचे उतार दिया। उसकी आँखों की पुतलियों के ऊपर दूधिया परत दिखी। माथा ठनका। अगले दिन उसे पशु -चिकित्सक के पास ले गए।

पेपे की एक आँख की रोशनी जा चुकी थी और दूसरी आँख भी धुँधली थी।

'कुछ नहीं किया जा सकता। इस प्रजाति के कुत्तों में यह बीमारी आम बात है।' – कह कर डॉक्टर ने आँख में डालने की दवाई दे दी।

घर लौटते ही पेपे फिर खाने को आतुर। प्यार

उमड़ पड़ा। खुद गोद में बिठाकर हाथ से खिलाया। पेपे चुपचाप उनकी गोदी में बैठा रहा। पेपे से ज़्यादा वह उदास थे। पेपे ने धीरे से उनका मुँह चाट लिया।

बानी पास होती तो खीझती –'जाओ मुँह धोकर आओ।'

तीन दिन बाद पेपे गोद से उतर कर धीरे-धीरे चलने लगा। जैसे नए सिरे से जगह और चीज़ों की पहचान कर रहा हो। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर बैडरूम तक गया। वह साँस रोके देखते रहे, कहीं गिर न जाए।

बानी तीन हफ़्तों के बाद कॉन्फ़्रेंस से लौटी तो हैरान रह गई । कोई नहीं कह सकता कि यह कुत्ता देख नहीं सकता।

'तुम्हें भी मेरे साथ कॉन्फ़्रेन्स मे आना चाहिए था।' बानी ने गिला किया।

'मैं पेपे को छोड़ कर कैसे जा सकता था? उसका कौन ख़्याल रखता?' उन्होंने अपनी मजबूरी बताई।

ईशा बुलाती –'डैडी, आप भी मम्मी के साथ कुछ दिन यहाँ आ जाइए। पेपे को कैनल में छोड़ आइए।'

'कैनल में कुत्तों की हालत देखी है कभी? ' वह तड़प उठते। कैसे समझाते कि पेपे को यूँ भी कई तकलीफ़ें हैं। नाज़ुक चमड़ी है, ख़ास शैम्पू से नहलाना पड़ता है। वक्त से आँखों में दवाई डालनी होती है।

बानी कहती – 'चलो अच्छा है कि तुम इसके साथ लगे रहते हो। नहीं तो तुम्हें कोई और शौक है ही नहीं। तुम सारा दिन इसके साथ बोर नहीं होते?'

'इसके साथ और बोर?' वह हैरान होकर पूछते।

'हम बाप-बेटे एक दूसरे से बातें करते हैं। यह मेरी बात सुनता है, समझता है। मेरा सोल-मेट है यह।'

पेपे को उस दिन उल्टियां आ गईं और पेशाब में भी ख़ून दिखाई दिया। वह बौख़ला कर फिर उसके डॉक्टर के पास भागे। इस बार हालत गम्भीर निकली। गुर्दे जवाब दे रहे थे। ऑपरेशन से ठीक होने की उम्मीद थी। ख़र्चा था-ढाई हज़ार डॉलरों का।

वहीं से उन्होंने याचना भरी आवाज़ में बानी कोफ़ोन किया था।

बानी तमतमा गई। एक कुत्ते के ऊपर इतना ख़र्चा? उससे रहा नहीं गया।

'मैं कहना नहीं चाहती थी। यहाँ पश्चिमी देशों में ही जानवरों के पीछे इतना पाग़लपन होता है। हमारे देश में तो आदमी की भी.....।' पता नहीं क्या सोच कर उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

फ़ोन पर दोनों ओर चुप्पी थी।

बहुत संयत और दृढ़ आवाज़ में उन्होंने एक सवाल पूछा-

'सिर्फ़ यह बता दो, पेपे की ज़िन्दगी की क़ीमत, मेरी ज़िन्दगी में ख़ुशी लाने वाली किसी भी चीज़ से कम क्यों है?'

बानी जो कहना चाहती थी कह न सकी।

'जो ठीक समझो, करो।' कह कर फ़ोन रख दिया।

वह चुपचाप आकर पेपे की टेबल के पास खड़े हो गए। लगा रो पड़ेंगे। धीरे से पेपे को छुआ। उसमें हरक़त हुई। पेपे ने अपना पंजा उनके हाथ पर रख दिया। उन्हें लगा जैसे कह रहा हो – 'कोई बात नहीं'।

डॉक्टर दोबारा कमरे में दाखिल हुआ।

'कुछ फ़ैसला किया?'

'हाँ, सर्जरी कर दीजिए।'

चार दिन में पेपे ख़ुद उठ कर अपने खाने के कटोरे तक पहुँचा। वह खुशी से खिल उठे – 'माई ब्रेव बॉय'। लगा पेपे के साथ-साथ उनमें भी जान आ रही थी।

ईशा को उन्होंने सब कुछ बता दिया।

'बहुत अच्छा किया डैडी। मम्मी की मत सुना कीजिए। आपका डॉगी है आपको जो ठीक लगे वही किया कीजिए।'

वह सुन कर हैरान हुए पर अच्छा भी लगा कि ईशा के मुँह से कितनी सहजता से 'आपका डॉगी' निकल गया।

बानी लौटी तो पेपे के पेट पर पट्टियाँ बँधी देख मन भर आया। लौटती है तो पेपे कैसे ज़ोर-ज़ोर से पूँछ हिला कर ख़ुशी ज़ाहिर करता है। चाबी वाले खिलौने की तरह भागता – दौड़ता है। दिखता नहीं, पेट पर पट्टियाँ बँधी हैं पर कोई अवसाद नहीं, मस्त ख़ुश रहता है।

पति को देखा, वह पेपे को गोद में उठा कर बाहर जा रहे थे।

'कहाँ जा रहे हो।' पीछे से आवाज़ दी।

'बेटे को घुमाने।'

'बाज़ार से कुछ सामान मँगवाना था।'

'ला देंगे।' वाक़ई पेपे को कार की पिछली सीट पर बैठा कर वह बाज़ार निकल गए।

अगले ही दिन बानी ने ध्यान दिलाया –'सुनो, आज पेपे कुछ खा नहीं रहा। लगता है कि इसका पेट भी ठीक नहीं।'

वह परेशान हुए। 'चलो डॉक्टर को दिखा देते हैं।'

'इतनी छोटी-छोटी सी बात पर डॉक्टर के पास भागने की ज़रूरत नहीं। वीकएंड है कोई डॉक्टर मिलेगा भी कहाँ ?'

अगले दिन भी पेपे निढाल पड़ा रहा। उन्होंने हथेली में लेकर बिस्कुट उसके मुँह से लगाए। पेपे ने छुए भी नहीं।

'बानी इसकी तबियत ज़्यादा ख़राब है।' उनकी घबराहट बढ़ रही थी।

'कल सुबह डॉक्टर को दिखा देंगे।'

सुबह ही बानी ने गाड़ी निकाली। वह गोद में तौलिया बिछाकर, पेपे को थामे साथ वाली सीट पर बैठ गए। अस्पताल आने से पहले ही पेपे के बदन में झुरझुरी सी हुई। फिर ख़ून की उल्टी और उसका सिर उनकी बाँह पर लुढ़क गया।

उनके मन में शंका हुई पर उन्होंने उस मनहूस ख़्याल को परे धकेल दिया।

डॉक्टर ने पेपे को देखा, चुपचाप देखता रहा। उनकी ओर मुख़ातिब होकर बोला – 'सॉरी, ही इज़ नो मोर।'

बानी उन्हें कंधे से पकड़ कर बाहर ले आई।

वह सुबक -सुबक कर रोने लगे। दुख का उमर से क्या वास्ता? बानी ने बाँह से उनके कंधों को समेट लिया।

हर वक्त उनके दिमाग़ में सवाल घुमड़ते रहते हैं। ऐसा कैसे हो गया? बानी को कठघरे में खड़ा कर देते – 'मैंने तुमसे कहा था न कि डॉक्टर के पास ले चलो उसे। तुम टाल गईं'

'पहले भी तो वह कई बार एक-दो दिन के लिए ऐसे ही ढीला हुआ करता था, फिर ठीक हो जाता था।'

'वह बेज़ुबान बच्चा, कुछ बता भी नहीं पाया।'

'उसने जाना था, बहाना लगना था। आप क्यों दलीलें करते हैं? बानी उन्हें सांत्वना देती। परेशान

थी कि कल जब वह काम पर लौटेगी तो यह कैसे अपने को सँभालेंगे?

जाते वक्त बोली थी –'देखो, दुख मुझे भी कम नहीं पर दुनिया के काम तो करने हैं न? अपना ख़्याल रखना।'

वह टेलीविज़न के सामने आकर बैठ गए। जल्दी ही ऊब गए। बानी पेपे की सभी चीज़ें बन्द करके गैराज में रख गई थी, सिवाए उसकी यादों के।

वह किताबें शुरु करते, थोड़ा सा पढ़ते, बन्द कर देते। अख़बार कई-कई बार खोलते, तस्वीरों पर नज़रें तिरतीं, कुछ समझ नहीं आता था। ख़ाली बैठे क्या करें? घर साफ़ करने लगे। वैक्यूम चलाया – ' आगे से हट पेपे!' पेपे हट गया।

दो हफ़्ते बाद डाक से एक भूरे रंग का बक्सा घर आ गया। पेपे के अवशेष थे।

उन्होंने घर के आगे की क्यारी में एक गड्ढा खोद कर सब कुछ डाल दिया। ऊपर चाइनीज़ डॉगवुड की झाड़ी रोप दी। एक स्मारिका बनवा कर लाए – जिस पर पेपे की तस्वीर उकेरी हुई थी। लिखा था – 'पेपे लिव्ड हियर 2003-2009'

शाम को वहीं घास पर कुर्सी डाल कर बैठ जाते। सूर्यास्त देखते रहते।

सोचते, पेपे मेरे जीवन में इतनी छोटी सी अवधि के लिए क्यों आया था? किसलिए आया था?क्या बताना चाहता था? क्या मतलब था इस सब का?

पेपे लौटा नहीं। आँखें नम हो जातीं। कितने दिन बीत गए। जब भी उसकी याद आती लगता किसी ने दिल को जलती लकड़ी से कुरेद दिया हो।

उठ कर चल पड़े। पाँव से कुछ टकराया, पेपे के गले का पट्टा था। उठा लिया। इसका एक छोर पेपे के गले में होता था और दूसरा उनके हाथ में। लगा यह रस्सी उन्हें पेपे से नहीं बल्कि ज़िन्दगी से बाँधे थी। दूसरा सिरा न छूटा, ज़िन्दगी पर पकड़ ही छूटती लग रही थी।

बानी से उनकी हालत देखी नहीं जाती।

'चलो कुछ दिन बाहर घूम आते हैं। यूँ बैठे-बैठे डिप्रैशन हो जाएगा।'

'तुम हो आओ।'

'देखो तुम कहीं बाहर नहीं जाते थे। हर वक्त पेपे का बहाना होता था। वह तुम्हें आज़ाद कर गया है। वह तुम्हारी रुकावट नहीं बनना चाहता था।'

वह संजीदगी से बानी को ताकते रहे।

बानी आज बड़ी देर तक ईशा सेफ़ोन पर बात करती रही। बानी के चेहरे पर चमक और उत्साह था।

'तुम नाना बनने वाले हो, बधाई। ईशा ने बुलाया है।'

वह चुप रहे।

'मेरी अगली छुट्टियों में चलो हम दोनों उससे जाकर मिल आते हैं।'

'तुम चली जाना।' वह चुपचाप बाहर निकल आए।

चलते -चलते एक छोटी सी झील तक पहुँच गए। बेंच पर बैठ कर सूर्यास्त देखते रहे। छोटे-छोटे सफ़ेद बादलों के टुकड़े धीरे -धीरे तिरते रहे। एक टुकड़े पर नज़र टिक गई। फिर वही सवाल।

'पेपे, तुम मेरे जीवन में किसलिए आए थे? कौन सा जीवन का सत्य था, जो तुम मुझे बताना चाहते थे?'

चलते -चलते एक छोटी सी झील तक पहुँच गए। बेंच पर बैठ कर सूर्यास्त देखते रहे। छोटे-छोटे सफ़ेद बादलों के टुकड़े धीरे -धीरे तिरते रहे। एक टुकड़े पर नज़र टिक गई। फिर वही सवाल। 'पेपे, तुम मेरे जीवन में किसलिए आए थे? कौन सा जीवन का सत्य था, जो तुम मुझे बताना चाहते थे?'

शायद एक सत्य यह भी था कि ईशा ने पेपे का जाना सहज भाव से स्वीकार कर लिया था। वह अब एक और नए प्राणी के आने का उत्साह से इन्तज़ार कर रही थी।

ईशा सान्तवना देती –'डैडी, अब आप अपने नाती की बेबी-सिटिंग करना।'

उनमें कोई उत्साह नहीं उमगता।

बानी उमग-उमग कर ईशा के यहाँ जाने की तैयारियाँ कर रही थी। घर लौटती तो ढेर सारा बच्चे का, ईशा का सामान लेकर। उन्हें खोल -खोल कर दिखाती।

'चलेंगे न?'

वह चुप रहते।

आज बानी अकेले ही ईशा के पास जाने वाली थी। वह बाहर निकल आए। पेपे की मिट्टी पर उगा झाड़ देखा तो देखते ही रह गए। हरे-हरे पत्ते हथेलियों पर सफ़ेद फूलों के गुच्छे सजाए जैसे किसी आरती की तैयारी कर रहे हों। कब आ गए ये फूल? उनके अन्दर कुछ पुलकित हुआ। पेपे सौ-सौ फूलों में सजीव हो उठा। वह अचंभित और अभिभूत! धीरे से फूलों को छुआ। उन पर प्यार से हाथ फेरा जैसे पेपे की पीठ को सहला रहे हों। भीग गया मन- मुंद गई आँखें।

एक छोटा सा सफ़ेद ऊन का गोला उन्हें लगभग छूता हुआ तीर की तरह छूटा। चौंके – पेपे? वह हैरान थे। दोबारा देखा। एक ख़रगोश अगले दोनो पंजे उठाकर कुछ कुतर रहा था। पूरी तरह हुमग कर, जैसे बस आज का ही दिन हो, कल शायद न मिले। फिर वह भाग कर क्यारियों के पीछे छिप गया। उनकी निगाहें उसे ढूँढने लगीं। वह दूसरी ओर भागा और उनकी आँखों से ओझल हो गया।

इतनी ऊर्जा, जैसे लॉन पर अभी अभी बिजली कौंधी हो। खटका सा हुआ। दिमाग़ में जैसे सोच ने गियर बदला हो। सब समझ में आ गया। जान लिया कि पेपे किसलिए आया था।

वह वापिस मुड़े। बानी सामान बाँधे जाने को तैयार थी।

'मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ ? ' उन्होंने बच्चों सी सादगी से पूछा।

*

अतीत की वापसी

अफ़रोज़ ताज

अफ़रोज़ ताज चैपल हिल में नॉर्थ कैरोलाईना विश्वविद्यालय के साऊथ एशियन कल्चर, लिटरेचर और मिडिया विभाग में प्रोफ़ेसर हैं। १९९५ में आपने नॉर्थ कैरोलाईना विश्वविद्यालय में हिन्दी-उर्दू पढ़ाने के लिए एक अग्रणी प्रोग्राम को प्रसार दिया, जिसके अन्तर्गत सीधे और विडिओ कॉन्फ्रेंस के माध्यम से संवाद-बातचीत द्वारा हिन्दी-उर्दू पढ़ाई जाती है। आप "A Door Into Hindi" and "Darvazah: A Door Into Urdu." लोकप्रिय वेबसाईटस का सृजन करने वाले हैं। आप उर्दू शायरी और शायरों, साऊथ एशियन थियेटर, सिनेमा और मिडिया पर शोध करने में रूचि रखते हैं। आपने South Asian Poetic Drama पर पीएॅचडी की है।

The Court of Indar and the Rebirth of North Indian Drama and Urdu Through Hindi. आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। गीत, ग़ज़ल और कहानियाँ भी लिखते हैं। 'पारसी थियेटर भारतीय फ़िल्म उद्योग में कैसे परिवर्तित हुआ' पर पुस्तक लिख रहे हैं।

पता:

Campus Box 3267 201 New West, University of North Carolina, Chapel Hill, 27599 USA

ई-मेल:

taj@email.unc.edu

डॉ. अफ़रोज़ ताज

वह फूट कर रो पड़ी और बोली, 'जब तुम पहली पत्नी को न भुला सके तो मुझ से शादी ही क्यों की?' उसकी हिचकियाँ बँध गईं,' अनिल तुमने मेरे साथ ही नहीं अपने साथ भी ज़ुल्म किया है। ज़रा सोचो मैं कब तक किसी के साये का पीछा करती रहूँ, तुम्हें ख़ुश रखने के लिए।'

'मैं ख़ुद न चाहता था कि मैं फिर से शादी करूँ पर मम्मी ने मुझे बहुत मजबूर किया और वे क़समें देने लगीं अपने जीवन की। मैं क्या करता, नीमा तुम ख़ुद सोचो मेरा दिलो-दिमाग़ मेरी पहली पत्नी के साथ उलझा हुआ है। मम्मी ने न जाने कितनी लड़कियाँ दिखाईं मगर हर लड़की में मैं अंजलि को देखने की कोशिश करता था और घबरा कर पीछे हट जाता था, यह मेरा मानसिक रोग नहीं तो और क्या था। मगर जब तुम मेरे सामने लाई गईं तो मुझे तुम में कुछ झलक अंजलि की दिखाई दी और मैंने मम्मी से हाँ कर दी। लेकिन मेरे मानसिक रोग ने मुझे उसकी यादों से आज़ाद होने का मौक़ा नहीं दिया और झलक के अलावा मैं तुम्हारे अंदर तुम्हारे स्वभाव, उठने बैठने, पसंद नापसंद में भी मैं अंजलि की तुलना करने लगा जो नामुमकिन है क्योंकि तुम वह नहीं और वह तुम नहीं। आज फिर मैं अकेला हूँ।'

'यही मैं पूछती हूँ, कि जब तुम तलाक़ के दस साल बाद भी उसकी यादों से आज़ाद नहीं, तो मुझे क्यों बाँधा अपने साथ?'

'मेरे दोस्त, मेरी मम्मी, मेरे रिश्तेदार, सब ने कहा कि शादी करलो। धीरे धीरे सब ठीक हो जाएगा, वह नई आने वाली तुम्हारे तमाम आँसू पोंछ देगी, वह तुम्हारा अतीत वर्तमान में बदल डालेगी।'

'मैं कोई जादूगर नहीं हूँ। अतीत वर्तमान में कैसे बदला जा सकता है भला? ख़ासकर जिस अतीत में मैं थी भी नहीं, उस अतीत को कैसे बाँध कर ला सकती हूँ।'

'तुम ला सकती हो मेरा खोया हुआ अतीत, मेरे बिछड़े हुए सुगंधित बाग़ात, मेरे खोये हुए गीत, मेरी नाराज़ बहारें जो वह एक पल में ठुकराकर चली गई, उसकी यादों की लहरों में मैं हिचकोले खा रहा हूँ अब तक, कभी उभरता हूँ उसकी नाराज़ सूरत देखकर, कभी डूबता हूँ जज की गूँजती आवाज़ के साथ, 'तलाक़ की ऐप्लिकेशन मंज़ूर कर ली गई'। बुलालो कचहरी से पहले के अतीत को, यह तुम ही कर सकती हो।'

एक दम यह कह कर उसने अपनी पत्नी नीमा के पैर पकड़ लिये। 'मैं डूब रहा हूँ, मुझे निकालो इस तूफ़ान से ....क्या तुम 'वह' नहीं बन सकतीं।'

'यह 'वह' कौन है जो हर समय मेरे सामने खड़ी है जिसे मैंने देखा तक नहीं जिस का नाम मैंने अपने पति की ही ज़बान से सुना। 'अंजलि' उसकी

पहली पत्नी। जब वह इतना प्यार करता है तो अंजलि ने उसे छोड़ा क्यों? और जब छोड़ दिया है तो वह अब इतना प्यार क्यों करता है?'

'मैं एक सोशल वर्कर हूँ, नीमा, मैं इतना ज़रूर कह सकती हूँ कि प्यार ही सब कुछ नहीं किसी को संग रखने के लिये। अब तुम ही देखो कितना प्रेम करती हो अपने पति अनिल से। तुम सुंदर भी हो, वह भी एक अच्छा नौजवान डाक्टर है। परंतु यह सब कुछ बेकार है अगर वह नहीं जिसकी उसे तलाश है।'

'जब से मैं ब्याह कर उसके घर आई हूँ, उसकी पहली पत्नी की छाया में डूबती जा रही हूँ। जैसे मैं अपने घर में नहीं अंजलि के घर में रह रही हूँ। क्या मैं वह नहीं बन सकती जिसकी उसे तलाश है?मुझे उसका खोया अतीत बना दो। मैं अनिल को भंवर से बाहर आता देखना चाहती हूँ। मैं वह सब करने को तैयार हूँ जिससे मैं उसकी अंजलि अपनी देह में, अपनी आत्मा में समोकर वापस ला सकूँ।'

'देखो नीमा, मैं अंजलि को नहीं जानती, वह कैसे हँसती थी, वह कैसे चलती थी, वह कैसे नाराज़ होती थी, उसकी पसंद न पसंद ..... भला मैं क्या जानूँ ? वरना मैं कहती जाती और तुम वैसा बनती जातीं, धीरे धीरे अपनी तस्वीर में अंजलि का रंग भरती जातीं।'

'अंजलि मुझे अजीब सा लग रहा है आप से मिलते, ...- मगर मेरे पास कोई दूसरा रास्ता न था, मैं किसी भी क़ीमत पर अपनी शादी कामयाब बनाना चाहती हूँ। मैं यह न पूछूँगी कि आपने अनिल से तलाक़ क्यों ली या क्या हुआ। मेरा मक़सद आपसे मिलने का यह हरगिज़ नहीं है। मैं बस यह देखना चाहती हूँ कि आप में ऐसी क्या बातें हैं जिसको मेरे पति अनिल भूल नहीं पा रहे और हर दिन वह एक अग्नि से गुज़र रहे हैं और मैं परीक्षाओं से। मुझे तुम 'तुम' बना दो।'

वह बोली ..-'तलाक़ में किसी का कोई दोष नहीं होता केवल 'काम्बिनेशन' का दोष होता है। दोनों ही बहुत अच्छे हो सकते हैं पर शायद दोनों एक दूसरे के लिए नहीं। अनिल बहुत अच्छे पुरुष थे पर वे मेरे लिए नहीं और मैं शायद उन के लिये नहीं। मैं कैसी हूँ, मेरी आदतें क्या हैं, मैं कैसे बात करती हूँ, सब सामने है। मेरी जगह कोई दूसरी होती तो कहती कि जिस अतीत के दरवाज़े मैंने

न जाने मुझे क्यों महसूस होता है तुम ने धीरे धीरे मेरे वे सुहाने दिन ला दिये जो मैं खो चुका था। तुम्हारा धन्यवाद और उनका भी जो कहते थे कि मैं शादी कर लूँ धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। लगभग पिछले एक साल से तुम्हारे हर क़दम पर मेरी खोई बहारें निछावर हो रही हैं, आँखें मूँद कर तुम्हारे कंधे के सहारे चलने को मन करता है। मेरे अतीत की यादें मेरे सपनों से बाहर निकलकर तुम्हारे रूप में मेरे आँगन में फिर से साकार हो रही हैं। तुम मेरा मज़बूत सहारा बन गई हो, नीमा।'

बंद कर दिये उसकी ओर मुड़कर अब मैं देखना भी पसंद नहीं करती। परंतु औरत होने के नाते मैं तुम से वास्ता न होने के बावजूद रास्ता बनाऊँगी और तुम्हें अपने घर से निकालने के बजाए तुम्हारी मदद करूँगी।' नीमा भभक कर रो पड़ी।

नीमा खिलखिलाकर हँसते हुए बोली, 'तुम्हें याद है न आज मेरी सरप्राइज़ बिर्थडे पार्टी।'

'अच्छी तरह याद है ' अनिल ने हँसते हुए कहा 'चलो आज तुम्हारे चहेते रेस्टोरेंट चलेंगे, यही तो रेस्टोरेंट है जो अंजलि को पसंद था ..... क्या बात है, नीमा?.....न जाने मुझे क्यों महसूस होता है तुम ने धीरे धीरे मेरे वे सुहाने दिन ला दिये जो मैं खो चुका था। तुम्हारा धन्यवाद और उनका भी जो कहते थे कि मैं शादी कर लूँ धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। लगभग पिछले एक साल से तुम्हारे हर क़दम पर मेरी खोई बहारें निछावर हो रही हैं, आँखें मूँद कर तुम्हारे कंधे के सहारे चलने को मन करता है। मेरे अतीत की यादें मेरे सपनों से बाहर निकलकर तुम्हारे रूप में मेरे आँगन में फिर से साकार हो रही हैं। तुम मेरा मज़बूत सहारा बन गई हो, नीमा।'

नीमा उसे देखती रही जैसे माँ अपने छोटे से बच्चे की बेमानी बातों में हाँ में हाँ मिला रही हो, बिना उन्हें सुने।

बड़े ध्यान से सुनती रही नीमा अंजलि को और फिर बोली, 'उसके चहरे पर वे सारी मुस्कुराहटें वापस आ गई हैं जिसकी मुझे आरज़ू थी। तुमने मुझे धीरे-धीरे ऐसा बना दिया कि अब उसको मुझसे कोई शिकवा, गिला नहीं। मैं समझती हूँ कि वह अब मुझमें तुमको पाता जा रहा है। तुमने मुझमें ख़ुद को भर दिया है, ऐसा लगता है कि मेरी चाल-ढाल और मेरे हर अंदाज़ में तुम समा गई हो, अंजलि।'

'कहीं उसको यह तो नहीं पता चला कि तुम लगभग हर हफ़्ते मुझसे मिलती हो?'

'नहीं, वह मेरे लाये हुए अतीत में इतना मुग्ध और मग्न है कि उसे अब यह सोचने का भी होश नहीं कि यह परिवर्तन मेरे अंदर कौन ला रहा है या यह कैसे हो रहा है।'

'तुम्हें कैसा महसूस होता है अब?क्या महसूस होता है तुमको कि तुम्हारे सपने साकार हुए? तुम्हारे ख़्वाबों को ताबीर मिली?'

'मुझे पल-पल लगता है कि मैं जीत रही हूँ और वह हार रहा है। मुझे 'तुम' बन कर रहने में मज़ा आने लगा है, मैं बड़ी बनती जा रही हूँ, वह छोटा होता जा रहा है। जब वह आफ़िस से वापस आता है मैं बढ़कर दरवाज़ा नहीं खोलती वह ख़ुद अपनी चाबी से दरवाज़ा खोलता है। मुझे उसके हाथ के पकाए हुए खानों में मज़ा आने लगा है। उसे मेरी सेवा करने में बड़ा आनन्द आता है। खाते समय वह मेरे लिये और अपने लिये पानी स्वयं

लाता है। वह पूछता है कौनसी फिल्म देखने का मन है तुम्हारा?'

'मैं बहुत ख़ुश हूँ कि तुम्हारी हर कामना पूरी हो रही है।

'कामना?वह कामना ही क्या जो पूरी हो जाए?' कहकर नीमा हँस पड़ी और बोली 'मैं मज़ाक़ कर रही हूँ। यस, मेरी हर ख़्वाहिश पूरी होती है अब। जहाँ मैं जाना चाहती हूँ वहाँ वह ले जाता है जो खाना चाहती हूँ वह बनाता है। जिस रंग की साड़ी पसंद हो, वह आ जाती है। जो फ़िल्म मैं देखना चाहती हूँ, वही वह पसंद करता है। जो फ़िल्म मुझे पसंद नहीं उसे भी पसंद नहीं। मेरी हर बात आसानी से मान जाता है। किसी बात पर बहस नहीं करता। उसका अब कोई दोस्त नहीं रहा है। मेरे ही दोस्त अब उसके दोस्त हैं। मेरे चारों ओर मैं ही बस मैं ही नज़र आती हूँ। जो मैं सुनना चाहती हूँ वह मुझे सुनाता है। महफ़िलों से लेकर बैडरूम तक बस मेरी ही मर्ज़ी का राज है। तुम में ऐसा सब कुछ क्या है जिसने उसे मेरे सामने बच्चा बना दिया है। हद है कि अब वह मेरे अपने बीच किसी के आते में डरता है, इसी डर से वह परिवार बढ़ाने के भी ख़िलाफ़ हो चुका है।'

'तुम नीमा बहुत ख़ुश क़िस्मत हो कि तुमको तुम्हारे सपने मिले जिनसे तुम आनन्द ले रही हो।'

'आनन्द? जो मैं कहलाना चाहती हूँ वह कहता है, मैं उसका जी.पी.एस. सिस्टम बन चुकी हूँ और वह सिर्फ़ एक ड्राइवर। कभी-कभी उसे यह भी जानना ज़रूरी नहीं कि मैं कहाँ जाना चाहती हूँ। बस मेरे कहे अनुसार मोड़ लेता रहता है। मुझे लगता है कि मैं पति के साथ नहीं, एक दर्पण के साथ रह रही हूँ। मैं मज़बूत और अकेली होती जा रही हूँ और वह कमज़ोर और मग्न। उसका मनचाहा साथी मिल गया है मगर अफ़सोस उसका मनचाहा साथी कितना अकेला है, वह नहीं जानता। यह क्या है मैं जानती हूँ अंजलि।'

'यह क्या है?'अनिल ने घबराकर पूछा।

'तलाक़ के काग़ज़ात' उसने कहा।

'अरे.....! क्या.....? लेकिन..... नीमा..... प्लीज़।'

'मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती थी। मगर मुझे क्या मिला? सिर्फ़ आइना। मुझे लगता है मैं दर्पण के मकान में रह रही हूँ। चारों ओर जिधर देखती हूँ केवल मैं ही मैं नज़र आती हूँ। मैं ऊब गई हूँ ख़ुद को देखते देखते। ख़ुद को खो चुकी थी तुम्हें तलाश करते करते।'

'क्या?.....लेकिन.....!'

'शायद अतीत तो वापस आ सकता है, पर समय की गति रोकी नहीं जा सकती। ..... लाए हुए अतीत का समय भी चलता रहा और फिर वहीं पहुँचा जहाँ तुम देखना नहीं चाहते। वह भी तो तुम्हारे उसी अतीत का एक हिस्सा है अनिल!'

'मैं समझा नहीं..... लेकिन अब तो सब ठीक चल रहा है।'

'मैं तुमसे तलाक़ माँगकर तुम्हारा पूरा अतीत वापस कर रही हूँ। तुम मुझे तलाक़ देकर मेरा खोया अतीत वापस कर दो।'

'अनिल मैंने तुम्हारे साथ न्याय किया है। तुम मेरे साथ न्याय करो। मेरी बिनती है कि इस काग़ज़ पर साइन कर दो, मैंने अपनी शादी बचाने के लिए जो क़दम उठाया था वही क़दम अब मेरी तलाक़ की वजह बन रहा है।

तुमने मेरा अतीत खोकर मुझे न पाया।

मैंने तुम्हारा अतीत पाकर तुम्हें खोया।'

अनिल सिहर उठा डूबते स्वर में बोला, 'मेरी बात तो सुनो नीम!'

'और हाँ,' वह बोली, ' तुम्हीं चाहते थे न कि मैं पूरी की पूरी अंजलि बन जाऊँ तो अगर मैं तुमसे तलाक़ न चाहती तो अधूरी ही अंजलि बनती।'

*

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

कहानी

कोख

बलराम अग्रवाल

बलराम अग्रवाल

जन्म : २६नवंबर, १९५२

शिक्षा : एमए, पीएचडी (हिन्दी), अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा

पुस्तकें : कथा-संग्रह-सरसों के फूल (१९९४), ज़ुबैद (२००४), चन्ना चरनदास (२००४); बाल कथा संग्रह-दूसरा भीम (१९९७), ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी (२०१२) समग्र अध्ययन-उत्तराखण्ड(२०११); खलील जिब्रान(२०१२)

अंग्रेजी से अनुवाद : फोक टेल्स ऑव अण्डमान एंड निकोबार (२०००); लॉर्ड आर्थर सेविलेज़ क्राइम एंड अदर स्टोरीज़(ऑस्कर वाइल्ड); अनेक विदेशी कहानियाँ व लघुकथाएँ।

सम्पादन : मलयालम की चर्चित लघुकथाएँ(१९९७), तेलुगु की मानक लघुकथाएँ(२०१०), 'समकालीन लघुकथा और प्रेमचंद'(आलोचना:२०११), 'जय हो!'(राष्ट्रप्रेम के गीतों का संचयन:२०१२); कुछ वरिष्ठ कथाकारों की चर्चित कहानियों के १२ संकलन; १९९३ से १९९६ तकसाहित्यिक पत्रिका 'वर्तमान जनगाथा' का प्रकाशन संपादन; सहकार संचय (जुलाई १९९७), द्वीप लहरी(अगस्त २००२, जनवरी २००३ व अगस्त २००७) तथा आलेख संवाद(जुलाई २००८) के विशेषांकों का संपादन हिन्दी साहित्य कला परिषद, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को १९९७ से अद्यतन संपादन सहयोग।

संपर्क :

एम-७०, उल्धनपुर जैन मन्दिर के सामने, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

ई-मेल :

2611ableram@gmail.com

मोबाइल : ०९९६८०९४४३१

लेडी डॉक्टर के मुँह से अपनी मेडिकल रिपोर्ट सुनकर चेतना का दिल बैठ गया। डॉक्टर कह रही थी कि उसके पाँव भारी हो पाने की सम्भवनाएँ बहुत क्षीण हैं। उसके इन शब्दों को सुनकर उसे लगा कि पाँव तो पाँव उसका समूचा बदन इतना भारी हो उठा है कि उसके उठाए भी कुर्सी पर से उठ नहीं पा रहा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा।

'पानी प्लीज़।' उसके मुँह से निकला। उसकी हालत को महसूस कर डॉक्टर खुद उठी और एक गिलास पानी में थोड़ा-सा ग्लूकोज़ घोलकर ले आयी।

'घबराओ नहीं चेतना, ईश्वर कृपा करे तो मेडिकल-रिपोर्ट्स भी फेल हो जाती हैं।' उसके मुँह से गिलास को लगाकर वह बोली,'मैंने खुद ऐसे कई केसेज़ देखे हैं।'

चेतना खूब समझ रही थी कि डॉक्टर जो-कुछ भी कह रही है वह सब उसे मात्र दिलासा देने के लिए ही है। फिर भी, उसके मन को यह सुनकर काफी तसल्ली मिली। कुछ राहत ग्लूकोज़-मिला पानी पीकर भी उसे मिली। कुछ पल-और बैठने के बाद वह उठ खड़ी हुई, बोली,'आपने मुझे तसल्ली दी...थैंक्स।'

'थैंक्स किस बात का मिसेज़ शर्मा।' डॉक्टर मुस्कराकर बोली,'मेरी सहानुभूति ही नहीं, शुभकामनाएँ भी आपके साथ हैं। आप देखना, ऊपरवाला एक दिन मेरी इस रिपोर्ट को जरूर झूठा सिद्ध कर देगा।...एण्ड रिमेम्बर-इन दैट केस द डिलीवरी मस्ट टेक प्लेस इन माय नर्सिंग होम।'

उसकी इस बात का चेतना ने कोई जवाब नहीं दिया। वह मुस्कराभर दी, क्योंकि वह जानती थी कि डॉक्टर की बातें उसे हताशा से बचानेभर के लिए हैं। उससे विदा लेकर वह बाहर निकल आयी।

सुदीप नर्सिंग होम के बरामदे में बैठा उसका इन्तज़ार कर रहा था। पत्नी को देखते ही वह उसकी ओर लपका।

'क्या बताया?' पास पहुँचते ही उसने पूछा।

चेतना ने बहुत कोशिश की अपने चेहरे पर मुस्कराहट लाने की। मुस्कराहट नहीं आयी तो अपने-आप को सामान्य रखने की। लेकिन इस कोशिश के कारण ही वह असामान्य हो गयी और सवाल सुनते ही सुदीप के सीने से सिर लगाकर सुबक पड़ी।

सुदीप हालाँकि उसकी ढीली-ढाली चाल देखकर ही रिपोर्ट को समझ गया था, फिर भी उसने बनावटी तौर पर उससे सवाल किया था। सुबकती हुई चेतना के हाथों से उसने रिपोर्ट वाला लिफाफा अपने बायें हाथ में ले लिया और दायें से उसे सहारा देकर बाहर की ओर ले चला।

'डोंट बी सिली चेती। यह तो तुम्हारा पहला ही टेस्ट था न।' चलते हुए सुदीप बोला,'तुमने इसे आखिरी कैसे समझ लिया।'

चेतना चुप रही। उसकी निगाह में सुदीप की बातें और लेडी डॉक्टर की बातें बिल्कुल एक-जैसी थीं-उसे मात्र तसल्ली देने वाली।

'चलकर किसी रेस्तरां में बैठते हैं।' उसे उदास देखकर सुदीप ने पुनः कहा,'कुछ खायेंगे-पियेंगे, फिर घर चलेंगे।'

'खाने-पीने का मन नहीं है।' उदास स्वर में चेतना बोली,'मैं आराम करूँगी।'

'ठीक है, इण्डिया गेट चलते हैं।' इस पर सुदीप तुरन्त बोला,'वहाँ पार्क में कुछ देर लेटेंगे-बैठेंगे। फिर कहीं चलकर।'

'मुझे कहीं नहीं जाना।' चेतना उसी प्रकार बोली,'सीधे घर चलो, बस।'

इस बार सुदीप कुछ नहीं बोला। थामे-थामे ही वह चेतना को नर्सिंग होम से बाहर ले आया। वहाँ आकर उसने अपनी मोटर साइकिल ली, स्टार्ट की और चेतना को उस पर बैठाकर घर की ओर चल दिया। रास्तेभर चेतना उसकी पीठ से चेहरा चिपकाए

बैठी रही, बोली कुछ नहीं। सुदीप ने भी उसे बातचीत के लिए नहीं उकसाया। इस समय की उसकी हालत को वह अच्छी तरह समझ रहा था।

घर के आगे मोटर साइकिल के रुकते ही उस पर से उतरकर चेतना ने ताला खोला और दरवाजे को ठेलकर तेजी से अन्दर दाखिल हो गयी। मोटर साइकिल को खड़ी करके सुदीप भी उसके पीछे-पीछे भीतर पहुँच गया। अन्दर अपने बिस्तर पर पड़कर चेतना जोरों-से रोने लगी थी। बिल्कुल ऐसे, जैसे रास्तेभर उसने बड़ी मुश्किल से अपने-आप को जब्त किये रखा हो। सुदीप उसके सिरहाने जा बैठा और सहानुभूतिपूर्वक उसके बालों में उँगलियाँ फिराने लगा। सहानुभूति पाकर रोते-रोते ही चेतना ने उसकी जाँघ पर अपना चेहरा टिका दिया। सुदीप पूर्ववत् उसके बालों में उँगलियाँ फिराता रहा और पता नहीं क्या-क्या सोचता रहा। कुछ देर बाद उसने महसूस किया कि चेतना का रोना धीरे-धीरे सुबकियों में बदल गया है और वह सो-सी गयी है। उसने धीरे-से अपनी जाँघ को उसके सिर के नीचे से निकाला और खड़ा हो गया। उसे अफसोस हुआ कि उसने मेडिकल चेक-अप कराने के लिए चेतना को क्यों उकसाया, जबकि वह पहले ही अपना चेक-अप करा चुका था और डॉक्टर ने उसे बता दिया था कि वह पिता बन सकता है।

चहल-कदमी करता हुआ वह बाहर आया और एक सिगरेट सुलगा ली। जब तक सिगरेट खत्म न हो गयी वह बाहर ही घूमता रहा और चेतना की संवेदनशीलता के बारे में सोचता रहा। अभी तो वह सो गयी थी, परन्तु जागने पर उसे पुनः उसके पागलपन का सामना करना पड़ेगा-उसे लग रहा था। कैसे समझायेगा उसे वह-यही उसकी चिन्ता थी।

रात अभी पूरी तरह नहीं गहरायी थी। फिर भी इधर-उधर घूमने जाने की बजाय उसने अब घर पर ही रहना बेहतर समझा। मोटर साइकिल को अन्दर खड़ी करके वह वापस बैडरूम में आ गया और कपड़े उतारकर बिस्तर पर ही पढ़ने को बैठ गया।

रात कब गहरायी-उसे पढ़ते-पढ़ते कुछ पता ही न चला। और न यह कि रात आधी के करीब बीत भी चुकी है। वह तो सोती हुई चेतना की आँखें खुलीं और उसने सरककर पुनः उसकी गोद

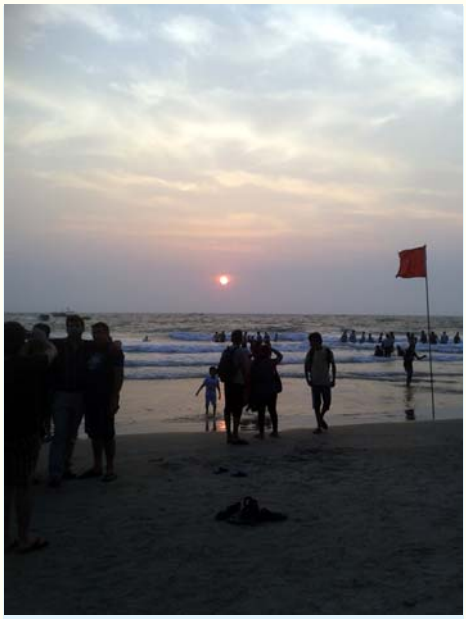

सुदीप ने कहा लेकिन वह यह भी समझ रहा था कि चेती जो कुछ भी इस समय कह रही है-वह भी परस्पर प्रेम के कारण ही कह रही है। इतना ज्यादा संवेदनशील उसने उसको इससे पहले कभी नहीं जाना था। इसलिए अपने शब्दों को वह बेहद संतुलित रखना चाहता था ताकि भूल से भी चेती की संवेदना उसके द्वारा आहत न हो।

में अपना सिर रख दिया तो उसका ध्यान किताब पर से हटा।

'कितना बज गया?' आँखें मूँदे-मूँदे ही चेतना ने पूछा।

'अँ?' उसके इस सवाल से वह एकदम-से हड़बड़ा-सा गया और उसने घड़ी पर नजर डाली,'साढ़े बारह।'

'दूसरों को उपदेश देते हो और खुद को नींद नहीं आ रही। क्यों?' वैसे ही पड़े-पड़े वह बोली।

'किताब पढ़ते-पढ़ते पता ही नहीं चला कुछ।' वह हकलाता-सा बोला।

'मैंने बेमतलब ही तुम्हारी जिन्दगी बेकार कर दी सुदीप।' इस बार चेतना उदास स्वर में बोली।

'चेती।' उसकी इस बात पर वह बड़े अपनेपन और प्यार के साथ बोला,'ऐसा क्यों सोचती हो तुम?'

'मुझे कोई हक नहीं ऐसा करने का।' उसकी बात को अनसुना करके वह बोलती रही।

'हम एक-दूसरे से प्यार करते हैं चेती, प्यार! हमारा सम्बन्ध संतान पैदा करने तक सीमित नहीं है।' सुदीप बोला,'न इतना सीमित वह कभी होगा।'

सुदीप ने कहा लेकिन वह यह भी समझ रहा था कि चेती जो कुछ भी इस समय कह रही है-वह भी परस्पर प्रेम के कारण ही कह रही है। इतना ज्यादा संवेदनशील उसने उसको इससे पहले कभी नहीं जाना था। इसलिए अपने शब्दों को वह बेहद संतुलित रखना चाहता था ताकि भूल से भी चेती की संवेदना उसके द्वारा आहत न हो।

'चेती, अगर तुम्हें लगता है कि बिना बच्चों के हमारी जिन्दगी नहीं, और यह घर घर नहीं, तो चलो, कल ही हम किसी आश्रम से एक, दो या जितने तुम चाहो-बच्चे गोद ले लेते हैं।' वह बोला।

'क्यों?'

'अगर तुम चाहो।' उसके इस सवाल पर सुदीप ने पुनः दोहराया।

'एक बात पूछूँ?' इतना कहकर इस बार चेतना उठकर बैठ गयी। लगा कि नींद का अपना कोटा वह पूरा कर चुकी है और अब पूरी तरह बहस के मूड में है।

'ऐसा क्यों जरूरी होता है कि बच्चा या तो पति-पत्नी दोनों संयुक्त रूप से पैदा करें या फिर दोनों बाहर का बच्चा गोद लें?' सुदीप की ओर से कुछ बात शुरू होने से पहले ही वह अपने प्रश्न के उत्तर में स्वयं बोली, 'दोनों में से किसी-एक की संतान भी तो उसी वंश की संतान माननी चाहिए।'

'यानी?' उसकी बात का आशय न समझ पाकर सुदीप ने पूछा।

'यानी यह कि...मेरी बात को मज़ाक या पागलपन नहीं समझना प्लीज़।' कहते-कहते ही वह बीच में बोली।

'मैं हमेशा तुम्हारी बात को वज़न देता हूँ यार।' सुदीप बोला, 'तुम्हें अचानक होपलैस तो नहीं हो जाना चाहिए।'

'तो सुनो,' चेतना ने कहना शुरू किया,'घर का मतलब है-वह छत जिसके नीचे प्यार और विश्वास पलता-पनपता हो। है न?'

'कहे जाओ।'

'सुदीप, बच्चा उस प्यार की देन है। प्यार, विश्वास, छत, घर और फिर बच्चा–यह एक क्रम है जिसने परिवार रूपी संसार को बनाया और चलाया हुआ है।'

चेतना गृहविज्ञान की अध्यापिका है और उसने दर्शनशास्त्र को लेकर एमए कर रखा है। इसलिए इस तरह की बहस को सुदीप उसका पागलपन नहीं मान सकता था। वह सुनता रहा।

'यह क्रम अलग–अलग जगहों पर अलग–अलग तरह से रुकता भी है। तो भी सृष्टि इतनी व्यापक है कि छोटी–मोटी रुकावटें इसकी निरन्तरता को बाधित नहीं कर पातीं।' कहते–कहते ही उसने पहलू बदला और चौकड़ी लगाकर बैठ गयी,'तुम इसे यों समझो कि किसी जोड़े में परस्पर प्यार नहीं है तो किसी में परस्पर विश्वास की कमी है। कोई छत के बिना अधूरा है तो कोई घर के बिना। यह सब भी हो गया तो बच्चा नहीं हुआ–जैसे कि हम।'

उसके अन्तिम शब्दों को सुनते ही सुदीप के सिर पर हथौड़ा–सा लगा। अभी तक वह चेतना को केवल सुन रहा था, समझ नहीं रहा था। इन शब्दों को सुनते ही वह याद करने लगा कि चेतना ने उससे क्या–क्या कहा है।

'यह सब कहने का तुम्हारा तात्पर्य क्या है?' उसके मुँह से अनायास ही निकला।

'तात्पर्य यह मेरे सरताज...' वह स्वर को नाटकीय बनाते हुए सहजता–से बोली,'कि परमात्मा की दुआ से इस छत और इन दीवारों के भीतर हम दोनों में प्यार भी है और विश्वास भी। तब सिर्फ इसलिए कि मेरी कोख इस लायक नहीं है, हम बच्चे से क्यों वंचित रहें? सृष्टि का विकास सिर्फ एक की अक्षमता के कारण क्यों रुके?'

'मतलब?'

'मतलब यह है कि हम दोनों का नहीं हो सकता न सही, सिर्फ तुम्हारा बच्चा अगर हो सकता है तो वह मेरा भी बच्चा होगा।'

'यानी कि मैं दूसरी शादी कर लूँ?'

'किस हरामजादी ने ऐसा कहा?' चेतना शरारतपूर्वक मुस्कराई,'तुम्हारे फ्रैंड–सर्किल में अगर कोई लेडी हो जो अपने लिए इस जिम्मेदारी से मुक्त हो चुकी हो–तुम उससे बात करो। न माने तो मेरी उससे बात कराओ–मैं मनाऊँगी उसे।'

यह एकदम अप्रत्याशित सलाह थी। उसे देखता रह गया सुदीप।

'चेती!!' उसके मुँह से निकला।

'मैंने पूरे होशो–हवास में यह कहा है।' चेतना बोली,'अनाथालय से बच्चा जरूर लाते अगर हम दोनों ही बेकार होते।'

सुदीप उसकी बात पर चुप बैठा रहा। पहले वह सिर्फ सुन रहा था। उसके बाद उसने समझना शुरू किया। और अब–सोचना। काफी देर तक वह सोचता रहा फिर बोला,'तुम्हारा सोचना सही हो सकता है चेती। पर यह प्रैक्टिकली सम्भव नहीं है। सबसे पहले तो मेरी ऐसी कोई दोस्त ही नहीं जिससे मैं ऐसी बातें कर सकूँ। दूसरे, अगर हो भी तो उसका अपना पति होगा, परिवार होगा। अपने अधिकार की कोख को कोई इस तरह उधार क्यों देना चाहेगा। यह मत भूलो चेती औरत में विश्वास का रास्ता उसकी कोख से ही जुड़ा है। वहाँ अगर कोई–और पहुँच जाए तो प्यार, विश्वास, छत और घर सब खण्डित हो जाते हैं। बी नॉर्मल चेती, बी नॉर्मल।' कहते हुए उसने चेती के सिर को सहलाया।

'मैं एकदम नॉर्मल हूँ सुदीप।' चेतना बोली, 'देखो, मैं अगर भावुकता में यह सब कहती तो मेरी आँखों में आँसू जरूर होते।'

'फिर भी, तुम्हारी ये बातें खूबसूरत कल्पना से ज्यादा और–कुछ नहीं हैं चेती।' सुदीप बोला।

'मैं जानती हूँ कि लड़कियों–औरतों से तुम उस तरह की दोस्ती नहीं कर सकते।' चेतना ने पुनः अपनी ही बात शुरू की,'तुम कहो तो मैं अपनी किसी फ्रैंड से बात करूँ?...सुनन्दा शायद मान जाये। उसका एक बेटा है और वह आगे कुछ नहीं चाहती। मैं उसे समझाऊँ तो...शायद...'

'बच्चे को लेकर तुम बहुत भावुक हो रही हो चेतना।' सुदीप बोला,'इतनी ज्यादा कि इस समय तुम सही ढंग से सोच भी नहीं पा रही हो। ऐसा करो, अब सो जाओ।...इस बारे में दो–चार दिनों के बाद बात करेंगे।'

'इस समय मैं न भावुक हूँ न कल्पनाशील।' चेतना दृढ़ स्वर में बोली,'देखो, कोई भी सम्बन्ध नाजायज होता है अगर वह व्यसन की दृष्टि से जोड़ा जाये। तुम यह सब छिपकर तो करोगे नहीं, और न हमेशा ही करते रहोगे।'

'तुम सम्बन्धों के आधार को नकार रही हो चेतना।' सुदीप बोला,'पहली बात तो यह कि सुनन्दा अपने बारे में अकेले फैसला नहीं कर सकती। किसी पारिवारिक व्यक्ति के अस्तित्व को परिवार से अलग करके नहीं आँकना चाहिए। चलो, मैं तुम्हारी बात ही बड़ी कर दूँ कि वह मान जाती है तो उसका पति किस आधार पर यह सब मानेगा?'

उसकी इस बात पर चेतना मुस्करा–सी दी। बिल्कुल ऐसे, जैसे उसकी निगाह में सुदीप निरा बालक है और कुछ विशेष बातें जो उसको पता हैं, सुदीप को नहीं मालूम हैं। उसने कुछ कहने के लिए मुँह खोला, फिर चुप रह गयी।

'कुछ कहना चाहती हो?' उसके इस भाव को भाँपकर सुदीप ने पूछा।

'हाँ, लेकिन वह बात मैं बाद में कहूँगी।' चेतना बोली,'फिलहाल यह बताओ कि अगर उसकी जगह तुम सुनन्दा के पति होते तो इस बारे में तुम्हारा क्या रुख रहता?'

'मुझे पता था कि तुम यह सवाल जरूर करोगी।' सुदीप मुस्कराया,'चेती, मैं दरअसल यही बात तुम्हें बताने जा रहा था–किसी अन्य स्त्री से पति के दैहिक सम्बन्धों को जानकर स्त्री जितना सह सकती है, किसी अन्य पुरुष से पत्नी के दैहिक सम्बन्धों को जानकर पुरुष उसका अंशमात्र भी सहन नहीं कर पाता। जानकर झेल लेने की तो बात ही क्या, भारतीय पुरुष तो इस तरह की कल्पना तक से हिल उठता है कि उसके चाहत–मण्डल की किसी स्त्री के दैहिक सम्बन्ध सामाजिक रीति–बन्धन से बाहर किसी अन्य पुरुष से भी हैं या रहे हैं। स्त्री कोमल–मना लेकिन विशाल–हृदया होती है चेती, और पुरुष कठोर–मन व संकुचित–हृदय। मैं सुनंदा का पति होता, तब तो इस प्रस्ताव को नहीं ही मानता; अब, उसके बजाय तुम्हारा पति होने पर भी यह प्रस्ताव मुझे आहत कर रहा है।'

पति के विचारों को जानकर चेतना को धक्का नहीं लगा। न ही उसे क्षोभ हुआ। बल्कि उसे थोड़ी तसल्ली हुई कि वह स्त्री के हृदय की व्यापकता और पुरुष–हृदय की संकुचितता को स्वीकार करता है। अपनी बातों को वह पूरे विश्लेषण के साथ कह सकता है। ऐसे आदमी के साथ आसानी यह होती है कि तर्क द्वारा उसे अपनी बात समझायी जा सकती है।

'कह चुके?' उसने सुदीप से पूछा।

'हाँ।'

'अब, मेरी सुनो।' जवाब पाकर वह बोली,'इस मामले में, जो इस समय हमारे बीच है, मुद्दा स्त्री या पुरुष के मनोविज्ञान का उतना नही है जितना दर्शन का। दर्शन की गलत व्याख्याओं ने ही हमारे मनोविज्ञान को बिगाड़ा है। सुदीप, सड़क के उस पार से इस पार आने को लालायित किसी अन्धे को देखकर तुम क्या करोगे?'

'मैं उधर जाकर उसको इस पार ले आऊँगा।' सुदीप तुरन्त बोला।

'हाँ।' जैसे कि फन्दे में फँसा लिया हो, चौकन्ने अंदाज में वह तुरन्त बोली,'इस मामले में उस अन्धे से तुम्हें कुछ मतलब नहीं; न उसका सड़क के उस पार या इस पार होना कोई अर्थ रखता है। वह अगर इस पार रहा होता और उस पार जाना चाहता तो भी तुम उसे उधर पहुँचाने जाते?'

'जरूर जाता।'

'यानी कि इस मदद की खातिर तुम उन जरूरी कामों को भी उस वक्त भूल जाते, जिन्हें करने के लिए तुम निकले थे।' चेतना उसको समझाते हुए बोली,'सुदीप, कुछ काम वास्तव में ही इतने मानवीय और आवश्यक रूप धारण कर लेते हैं कि सामान्य किस्म की हमारी मान्यताएँ उनके आगे एकदम बेमानी, एकदम निरर्थक हो जाती हैं। रोजाना की अपनी जिन्दगी में हम अक्सर ऐसे काम करते हैं जिनसे हमारा सम्बन्ध स्थूलत: ही होता है। अगर मेरी नजर से देखा जाय तो बुरे काम करने वाला हर आदमी बुरा और अच्छे काम करने वाला हर आदमी अच्छा नहीं है–जब तक कि उसके द्वारा किये काम का आकलन उसके अन्तर की गहराई तक जाकर न किया गया हो।'

'यानी व्यभिचार में लिप्त हो जाओ और कहो कि...।' सुदीप उत्तेजित-से स्वर में बोला।

'लिप्त...यही सुनना चाहती थी मैं।' चेतना उसकी बात को बीच में ही काटकर बोली,'गलत कामों में लिप्त हो जाना तो जरूर व्यभिचार है और व्यसन भी। लेकिन वे लोग जो आवश्यकतावश, विवशतावश या परिस्थितिवश उधर हैं, उन्हें तो व्यभिचारी नहीं कहा जा सकता! और, न ही उन लोगों को जो अच्छे उद्देश्य के लिए...। एक बात कहूँ?' इस बार उसने अपनी ही बात को बीच में सुदीप से पूछा।

'कहो।'

'तुम्हें धक्का तो जरूर लगेगा मेरी बात सुनकर लेकिन सुनन्दा-जैसा प्रस्ताव अगर मेरे सामने रखा जाता तो...' उसने शायद जानबूझकर अपना वाक्य पूरा नहीं किया क्योंकि उसका आशय सुदीप समझ चुका था और आश्चर्य-से उसकी ओर देखने लगा था।

'इस समय तुम पर माँ बनने का भूत सवार है चेती।' देखते-देखते ही वह बोला,'इसलिए इस समय नैतिक-अनैतिक का विचार त्यागकर हर उस सम्भावना के पक्ष में अपनी राय दोगी जिसमें बच्चा पैदा होने की कल्पना हो।'

'यानी कि तुम मुझे समझ ही नहीं पा रहे।' इस पर चेतना थोड़ा आक्रोशपूर्वक बोली,'मैं नैतिक और अनैतिक शब्दों की अन्त:भावना तुम्हारे सामने रख रही हूँ और तुम हो कि'

मानसिकता का यह अलग ही टापू था। वह, जिस पर सुदीप नहीं था। वह चाहती थी कि देह के एकदम पार निकल जाएँ। सम्बन्धों की ऐसी दरियादिली को सुदीप महसूस करे समझे। वह अगर समझ गया तो उसे इस टापू पर आते देर न लगेगी और तब कोखहीन होकर भी बिना किसी दुविधा-विशेष के वह अपने पति के बच्चे की माँ बन सकती है। इस काम के लिए जहाँ तक एक अदद कोख की जरूरत का सवाल था, सुनन्दा पर उसे पूरा यकीन था। वैचारिक धरातल पर उससे उसकी अच्छी ट्यूनिंग थी। दूसरी बात जो उसके हक़ में थी, यह कि दिनेश, सुनन्दा का पति, अगले ही माह दो साल के लिए कनाडा जा रहा था। यही वह रहस्य था जो सुदीप को नहीं मालूम था। और जिसे याद करके अभी, थोड़ी देर पहले चेतना के मुख पर मुस्कान तिर आयी थी। उसने सोच लिया था कि उसके कहने पर इशारतन सुनन्दा दिनेश से इस बारे में उसके विचारों को टोह लेगी। अगर वह इस प्रस्ताव से असहमत नजर आया तो इस कार्य को उसकी सहमति के बिना भी किया जा सकेगा। सुनन्दा गर्भवती होगी। कनाडा पहुँचने के अगले ही माह इस बात का रोना वह दिनेश को भेज देगी। साथ ही लिखेगी कि परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है, चेतना उस बच्चे को गोद लेने को तैयार है। बच्चा जन्म लेगा और चेतना की गोद में आ पड़ेगा। कनाडा से लौटने पर सुनन्दा दिनेश को मनसा-वाचा-कर्मणा एकदम वैसी मिलेगी जैसी वह उसे छोड़कर जायेगा।

इस सुखद कल्पना ने उसके हृदय को जैसे किलकारियों से भर दिया। उसने आँखें मूँद लीं, गोया स्वप्न का कोई हिस्सा उसकी पलकों के भीतर से फिसलने की फिराक में हो और वह वहाँ से उसे खिसकने तक न देना चाहती हो।

'क्या सोचने लगी?' सुदीप से उससे पूछा।

'सोचने नहीं, देखने।' ज्यों की त्यों बैठी रहकर वह बोली,'सपना देख रही हूँ।'

'सपना देखना बुरी बात नहीं है चेतना।' सुदीप बोला,'बशर्ते, 'सच' की लगाम में उन्हें जकड़कर रखा जाये। मान लिया कि इस काम के लिए मैं मान जाता हूँ। तुम्हारी परस्पर ट्यूनिंग की वजह से या एक रोमांच के बहाने, माना कि सुनन्दा भी अपनी स्वीकृति दे देती है। तब भी, सबसे पहली बात तो यह है कि सुनन्दा और मेरे सम्बन्ध को हमें कहीं न कहीं छिपाना जरूर पड़ेगा–परिवार से, समाज से। दूसरी और महत्वपूर्ण बात, जिसे नकारना किसी के लिए सम्भव नहीं होगा, यह कि बच्चे का सवाल पितृत्व से उतना नहीं जुड़ा होता जितना मातृत्व से। शुरू-शुरू में जो होगा सो होगा, हम हँसेंगे-बोलेंगे। खूब आना-जाना भी रहेगा। लेकिन बच्चे के जन्म के बाद सुनन्दा का मातृत्व अवश्य उसमें उमड़ पड़ेगा। तब इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि वह उस बच्चे को हमें सौंप ही देगी। जरा सोचो–क्या होगा, जब उस बच्चे को न हम छोड़ पायेंगे और न सुनन्दा?'

इस बात पर चेतना चुप रही। सुदीप का यह तर्क उसे बहुत सही लगा। इस सबके बावजूद कि बच्चा दूसरी मानसिकता से अर्थात सन्तान की इच्छुक और कोखहीन सहेली की गोद में डालने के लिए पैदा किया जायेगा–अपनी कोख से उत्पन्न बच्चे को कोई भी स्त्री, विशेषकर भारतीय इतनी आसानी से तो किसी को सौंपने से रही।

जैसे हार गयी हो–ऐसी हताश नजरों से वह सुदीप की ओर देखने लगी। वह सब-कुछ, जो शाम को लेडी डॉक्टर के केबिन में उसके भीतर उमड़ा था, तेजी के साथ पुन: उमड़ पड़ा। आँसुओं की झड़ी लग गयी। वह पुन: रोने लगी और रीढ़वहीन-सी सुदीप की गोद में ढेर हो रही।

*

संस्मरण

त्रासदी छः माह की.... दर्द उम्र भर का

विकेश निझावन

पटियाला के उस बड़े बाज़ार में हम फुलकारी और तिल्ले से जड़ा दुपट्टा ढूँढ़ रहे थे। बड़ी दी की इच्छा थी कि उनकी बेटी के विवाह पर ये दोनों चीज़ें भारत से आनी चाहिए और वह भी पंजाब से।

पता चला था कि जीजा के एक दोस्त लंदन जा रहे हैं, उन्हीं के हाथों ये दोनों चीज़ें भिजवाना तय हो चुका था। यह खरीदारी करते वक्त हमारे भीतर भरपूर उत्साह था। इस वक्त मैं, भाभी और मँझली दी इस बड़ी सी दुकान में बैठे फुलकारी और दुपट्टों को छाँट रहे थे। दरअसल भाभी का मायका यहीं पर है सो दिक्कत वाली कोई बात नहीं थी। हालाँकि पहले हम भाभी के मायके जाकर नाश्तापानी कर आए थे और उसके बाद ही हम बाज़ार के लिए निकले थे।

दुपट्टा और फुलकारी पसंद कर लिये गए थे। अभी दुकानदार से मोलभाव चल ही रहा था कि भाभी के पिता, जिन्हें अन्दाज़ा था कि हम किस तरफ़ आए होंगे, हमें ढूँढ़ते हुए उसी दुकान पर आ पहुँचे थे। हमारे हाथ से दुपट्टा लगभग छीनते हुए उन्होंने कहा था, इसे यहीं छोड़ दो और तुम लोग घर चले जाओ। उनका स्वर रूआँसा था।

आखिर हुआ क्या? हमारा स्वर भी काँप गया था।

तुम लोग अभी वापिस चले जाओ।

कुछ बताइये तो सही! अब कंपन हमारे पूरे शरीर में था।

जरनैल नहीं रहे! उन्होंने टूटे शब्दों में कहा तो हमारे पाँव तले से ज़मीन खिसकने को हुई। तुरन्त टैक्सी लेकर हम अम्बाला पहुँचे थे।

सबसे छोटे जीजा, जो सेना में कर्नल थे, उनका राजौरी में देहान्त हो गया था। ये सब कैसे हुआ, अभी सब पूरी तरह से पता नहीं चल पा रहा था। परन्तु उस व्यक्ति का हमारे जीवन से अकस्मात् चले जाना हमें रुला गया था।

हमारे अम्बाला पहुँचने तक परिवार के बाकी सदस्य अपनी-अपनी गाड़ियों पर जम्मू के लिए रवाना हो चुके थे। अम्बाला से जम्मू जाने के लिए इस वक्त कोई गाड़ी न थी। मेरे लिए यह दुविधा थी कि बस से इतना लम्बा सफर तय करना मेरे लिए मुमकिन नहीं था।

अगले रोज़ जम्मू के लिए रेलगाड़ी का टिकट लिया। साथ में मेरे एक मित्र भी थे। वे जानते थे कि जम्मू के बाद बस या फिर आर्मी की कोई गाड़ी लेने आई होगी, किसी भी पहाड़ी इलाके का सफर मेरे लिए जोखिम भरा होगा। लेकिन जैसा वक्त होता है, व्यक्ति के भीतर वैसी ताकत आ जाती है। घुमावदार पहाड़ियों के बीच भी बिना किसी मितिलाहट के हम पहुँच गए थे। इस वक्त यह सफर और घुमावदार पहाड़ियाँ तो मेरे सामने थीं ही नहीं। मैं तो रास्ते भर जीजा से बातें करता चला गया था।

लगभग ढाई घंटे लगे थे हमें वहाँ पहुँचने में। जीजा का पार्थिव शरीर और दीदी का विलाप सब कुछ बर्दाश्त से बाहर था।

समय बड़ा कठोर है। अपनी तरह इन्सान को भी कठोर बनाता चला जाता है। दीदी के आगे केवल अपना नहीं, दो मासूम बच्चों का जीवन था। छोटा तो मुझे खींच कर पूरी बटालियन दिखाने ले गया था, यहाँ पापा हर रोज़ सुबह एक्सरसाइज़ के लिए आया करते थे। वहाँ सामने मुर्गियों का बाड़ा है, जहाँ से हर रोज़ फ़्रेश अण्डे आया करते हैं। उधर घोड़ों का तबेला है। जो राजा है न, बिल्कुल गोल्डन है। मैं समझ गया था कि राजा किसी घोड़े का नाम है। पापा ने हमसे हार्सराइडिंग सिखाने का भी प्रॉमिस किया था। वो सामने नदी है न, एक बार नौका से हमने इस नदी को भी पार किया था। एक ही साँस में न जाने कितना कुछ बता गया था। सहसा वह रूका। मेरी ओर देखता बोला यह हमारी बटालियन का मन्दिर है। उसने मंदिर के आगे माथा झुकाया लेकिन इस वक्त उसकी आँखों में आँसू थे। एक डर उसके चेहरे पर स्पष्ट झलकने लगा था।

क्या हुआ? मैंने पूछा।

घर चलते हैं। शायद पापा !

पूरी रात उस पार्थिव शरीर के आसपास बैठे हमने रात गुज़ार दी। सुबह तोपों की सलामी के साथ वह शरीर अग्नि के हवाले कर दिया गया। केवल इसी वक्त इन्सान सोच पाता है कि मौत ही जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है।

जीवन की कोई भी सच्चाई मिटती नहीं। इन्सान एक ही दिनचर्या से ऊब जाता है जैसे, रोते-रोते भी वह वैसी थकान महसूस करने लगता है और चंद पलों के लिए मुस्कराहट की आड़ लेता है। सच में, उस आढ़ को हमने अभी ओढ़ाया ही था कि जैसे एक तेज़ आंधी आयी और उस आँधी ने उस ओढ़नी को हम सबके ऊपर से उतार जाने कितनी दूर फेंक दिया।

लंदन में दीदी और जीजा बेटी के विवाह की तैयारियों में थे कि जीजा को पैरेलेसिस का अटैक हो आया। और पन्द्रह दिन बाद ही मौत उनके दरवाज़े पर दस्तक दे बैठी। तीन माह बाद ही इस परिवार में दूसरी मौत। दी अकेली पड़ गई थीं। मैं उसी रोज़ वीज़ा के लिए कोशिश करने लगा। बड़ी कोशिश के बाद वीज़ा लगा लेकिन इमीग्रेशन स्टैम्प के लिए मुझे चण्डीगढ़ जाना था। दिल्ली से अम्बाला और अम्बाला से चण्डीगढ़। कभी इस दफ्तर कभी उस दफ्तर! खैर, यह औपचारिकता भी पूरी हो गई। बस अब तो जल्दी जाने वाली बात थी। घर पर फोन किया कि मेरा अटैची तैयार रखो। सुबह

की गाड़ी से ही दिल्ली चला जाऊँगा और जिस फ़्लाइट का टिकट मिला, वही ले लूँगा।

चण्डीगढ़ से अम्बाला आते हुए मेरा स्कूटर कहीं लड़खड़ा गया और माथे पर चोट लगने के कारण मैं वहीं बेहोश हो गया। जब होश आया तो मैं अस्पताल में था। खून काफी बह चुका था और डाक्टर ने कम से कम एक महीना फ़्लाई करने के लिए मना कर दिया था।

धीर-धीरे ज़ख्म भरा और एक महीने के बाद मैं लंदन के लिए रवाना हुआ। हवाई जहाज़ से यात्रा का यह पहला अनुभव था। मेरे आसपास वाली सीट पर दो व्यक्ति बैठे थे। दायीं ओर एक नौजवान था, उम्र लगभग चालीस वर्ष होगी। चेहरा चमकदार था परन्तु आँखों में उदासी की झलक स्पष्ट थी। बातचीत से पता चला कि उनके एक प्रिय दोस्त, जो पिछले बीस वर्षों से वहाँ हैं, कैंसर से पीड़ित हैं। डॉक्टर के कहने अनुसार जीवन के आखिरी पड़ाव पर हैं। बस उन्हीं के पास जाना हो रहा था उनका। दूसरी ओर एक भद्र महिला, जो न्यूयार्क में एक सप्ताह के लिए किसी कान्फ्रेंस के सिलसिले में जा रही थीं। उनके भीतर की उत्सुकता उनके चेहरे पर स्पष्ट थी। मेरे विषय में जान दोनों से ही बातों का सिलसिला चलता रहा। लंदन पहुँचते ही हमने एक दूसरे को शुभकामनाएँ देते हुए विदाई ली। भाई लेने के लिए एयरपोर्ट पर आए हुए थे। सबसे पहले उन्होंने मुझे जैकेट ओढ़ाई। लंदन में गर्मियों की फरीटेदार हवा भी भारत की सर्दियों से कहीं तीखी थी।

लंदन की अपूर्व सुन्दरता का जो चित्र मेरे मस्तिष्क में अंकित था, इस वक्त मैं उसे साक्षात् देख रहा था।घर पहुँचने तक चौड़ी-सपाट सड़कें विशेष रूप से सम्मोहन पैदा कर रही थीं।

दी प्रतीक्षा में थीं। देर तक हमने एकदूसरे को बातों से और खामोशी से आत्मसात किया। मेरे चेहरे पर थकान थी। वहाँ से चला था तो सुबह का सूरज उगा था। और यहाँ भी दिन अपने यौवन पर। दिन बहुत ही लम्बा हो गया था। कुछ घंटे आराम करने के बाद मैं उठा और फिर से जाने कितनी बातों का सिलसिला जारी हो गया। जीजा की कितनी बातों को याद कर हम रोए भी, हँसे भी।

दी बता रही थीं कि लड़के वाले शादी जल्दी चाह रहे हैं। दी ने हिम्मत जुटाई और हम लोग

मेरे आसपास वाली सीट पर दो व्यक्ति बैठे थे। दायीं ओर एक नौजवान था, उम्र लगभग चालीस वर्ष होगी। चेहरा चमकदार था परन्तु आँखों में उदासी की झलक स्पष्ट थी। बातचीत से पता चला कि उनके एक प्रिय दोस्त, जो पिछले बीस वर्षों से वहाँ हैं, कैंसर से पीड़ित हैं। डॉक्टर के कहने अनुसार जीवन के आखिरी पड़ाव पर हैं। बस उन्हीं के पास जाना हो रहा था उनका। दूसरी ओर एक भद्र महिला, जो न्यूयार्क में एक सप्ताह के लिए किसी कान्फ्रेंस के सिलसिले में जा रही थीं। उनके भीतर की उत्सुकता उनके चेहरे पर स्पष्ट थी।

विवाह की तैयारियों में जुट गए। लड़के वालों की माँग थी कि कोर्ट मैरिज के अलावा वे भारतीय रीतिरिवाज के मुताबिक भी शादी करना चाहेंगे।

एक बहुत बड़ा हॉल बुक करवा दिया गया था। लगभग डेढ सौ बराती और करीब पचास-साठ लोग अपनी तरफ़ से भी होंगे। दो-ढाई सौ लोगों के लिए खाने-पीने का इंतजाम करवा दिया गया था। मैं और दी सप्ताह में दो बार शादी की खरीदो-फरोख़्त के लिए निकल जाते। लड़के की माँ का कहना था कि उन्हें लालच तो नहीं है परन्तु वे बेटे की शादी पर कई चाव पूरे करना चाहती हैं।

जीजा के न होते हुए भी शादी पूरे धूमधाम से की गई। सभी ने इसका लुत्फ़ उठाया। मैं तो यही सोच रहा था, बेटियों के लिए इन्सान सब कुछ करता है, भले ही वह भारत की ज़मीन पर हो या दूसरे देश की। और फिर भारतीय मानसिकता भी तो नहीं खत्म हो रही। दहेज लेना तो जैसे भारतीय संस्कृति में शामिल हो चुका है। उस रात मैंने लघुकथा संस्कृति लिखी थी।

मैं लंदन तीन महीने रहा। इन तीन महीनों में वहाँ के अनेक दर्शनीय स्थल देखे। वहाँ की आर्टगैलरी, म्यूज़ियम,गार्डन्ज़, चीनहाउस, डॉलहाउस, टेम्स नदी, ग्रीन्ज़हाउस, मैडमतुषाज़, ब्राईटनबीच आदि। लंदन की सुन्दरता, साफ़-सफ़ाई, रहनसहन, खानपान सभी कुछ सम्मोहित करने वाला था। आखिर तीन माह गुज़र गए। बस एक दिन रह गया था। दी ने ज़ोर दिया, अब आया हुआ है तो रुक जा। वीज़ा भी छह माह का लगा हुआ है।

लेकिन टिकट

एक्सटेंड करवा लेते हैं।

उसी शाम टिकट एक्सटैंड करवा लिया गया था।

कुछ दिनों से एक कहानी शुरू की हुई थी। रह-रह कर दोनों जीजों का ख़्याल आता। भारत में बुआ तो विलाप करती रह गई थीं कि उनका जाने का समय हो रहा था और ये दोनों चले गए। सच में बुआ ये सब सहन नहीं कर पा रही थीं। कहानी का शीर्षक श्मशान रखा गया और उसमें बुआ के भीतर की तड़पन को दिखाया गया कि घर के दो दामाद चले जाने से उन पर क्या गुज़र रही है।

आज रात कहानी पूरी करना चाह रहा था। मैं रात को ऊपर वाले कमरे में अकेला होता था। कहानी आगे बढ़ती चली गई। और कहानी में मैंने दो की नहीं, तीन दामाद की मृत्यु का वर्णन कर दिया। रात कहानी पूरी कर उसे तकिये के नीचे रख सो गया।

सुबह सवेरे गहरी नींद में था कि नीचे से दी की चीख सुनाई दी। झट से उठा और नीचे की तरफ़ भागा। दी ने बताया कि मँझले जीजा नहीं रहे। कहीं से वे कूलर के करण्ट की चपेट में आ गए थे। मैं जड़ हो आया। एक हृष्ट-पुष्ट शरीर इस तरह से जान गँवा गया। छह माह के भीतर तीन मौतें। तीनों जीजा चले गए। रात कहानी में मैंने तीसरी मौत दिखा दी थी। क्या सरस्वती मेरी कलम पर आकर बैठ गई थी। मैं तेज़ी से ऊपर वाले कमरे की ओर भागा। तकिये के नीचे से कहानी के उन पन्नों को निकाल उन्हें चिंदिया-चिंदिया कर दिया और दरवाज़े की ओट ले फफक पड़ा था।

*

557 B, Civil Lines TII
Oppsite Bus Stop,
Ambala City-134003
Haryana.
ईमेल -
vikeshnijhawan@rediffmail.com

FAMILY DENTIST

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

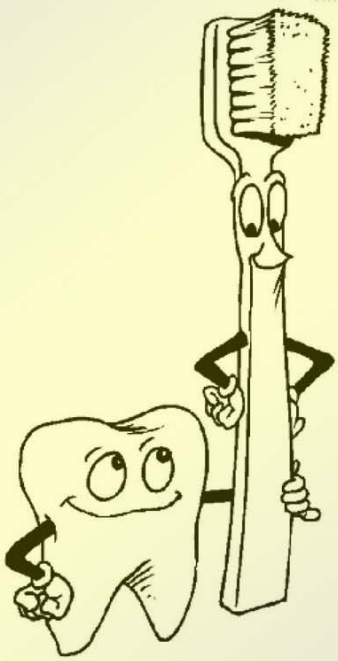

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Dr. Kiran Arora
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

साधना अग्रवाल

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अखबार वाला' का अंतर्पाठ

भारतीय प्रवासी लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी एक अरसे से कहानियाँ लिखती रही हैं। उनका कहानी संग्रह 'उत्तरायण' पिछले वर्ष ही आया है लेकिन हिन्दी संसार के पाठक उनके नाम से विशेष परिचित नहीं होंगे, ऐसा संभवत: इसलिए भी हुआ समकालीन चर्चित पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ कम ही छपीं या उनकी खास नोटिस नहीं ली गई, इसलिए भी एक कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बनाने में उन्हें कठिनाई हुई। लेकिन मुझे लगता है कि यदि कोई पाठक एक बार उनकी इस कहानी 'अखबार वाला', जिस पर हम विचार करने जा रहे हैं, पढ़ ले तो उन्हें आसानी से नहीं भूल सकता। प्राय: प्रवासी लेखकों की कहानियों में अतीत की स्मृतियों का द्वंद्व से उत्पन्न कोलाज होता है, जिसे आप चाहे तो करुणा विगलित नोस्टेलजिया भी कह सकते हैं लेकिन सुदर्शन प्रियदर्शिनी की इस कहानी में अतीत भी है और उसकी स्मृतियाँ भी, भारतीय संस्कृति और उसके संस्कार भी हैं लेकिन सबसे बढ़कर उस भयावह परिवेश के वर्तमान के कठोर यथार्थ की टकराहट है, जिसके केन्द्र में मनुष्यता की खोज है।

अपनी इसी कहानी की रचना-प्रक्रिया के बारे में वह लिखती हैं-'स्थितियों का बेगानापन, भावनाओं का विरोधाभास, व्यक्तियों की तटस्थता और एक बेलाग, बेतहाशा दौड़ती जिंदगी से मोहभंग की कहानी है यह। यह कहानी यथार्थ की पनडुब्बी से निकली है। इस तल में है मेरी उदासी, हैरानगी और एक अभंग सा मोहभंग। बहुत दिनों तक जब उबर नहीं पाई तो इस बेलाग तटस्थता से उतर आई यह कलम की ज़ुबान पर ....नहीं रह सकी अपना दर्द बाँटे बगैर। यूँ तो आज अपनी ज़मीन भी इस ज़मीन जैसी समतल हो गई है। इसलिए अब मोहभंग भारत आकर होते हैं, यहाँ नहीं। वहाँ अभी भी हम अपने हिंडोले में झूलना चाहते हैं, अपनी ही संस्कृति की लोरियाँसुनना चाहते हैं, जो यहाँ कब की मर चुकी हैं। आधुनिक सभ्यता के तेज़ तूफ़ानों में तिरोहित हो चुकी हैं। संबंध, रिश्ते यहाँ एक बेजा

साधना अग्रवाल
B-19 / F, दिल्ली पुलिस अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेज-1, दिल्ली-110091
मो0 -9891349058
agrawalsadhna2000@gmail.com

सी गाली है जो आपका रास्ता रोकते हैं। बेलाग से किनारे पर खड़े आवाज़ देते रहें, बस ठीक है, यहाँ आपा-धापी है तो केवल अपनी। पाना और खोना सिर्फ बाहरी है-भौतिक है। यहाँ केवल सिक्का चलता है, चूमा-चाटी, गलबहियाँ सब दिखावटी और स्थितिपरक चोंचले हैं। इसलिए पहली बार मौत को इतने नज़दीक या वास्तव में इतनी दूर से देखकर मन दहल गया था। उसी दहल से निकली यह कहानी है 'अखबार वाला।'

दरअसल 'अखबार वाला' एक छोटी कहानी है लेकिन कहानी में जिस भयावह यथार्थ को उठाया गया है, उसका सरोकार बड़ा है, सीधे मनुष्य होने के अर्थ की तलाश करता हुआ। विदेशी परिवेश है जहाँ भारतीय मूल की एक औरत अकेली रहती है। उसके इस अकेलेपन में पीछे छूटा घर-द्वार, परिवार की छोटी सी झलक मिलती है लेकिन विदेशी परिवेश में अकेली रह रही जया नामक इस औरत के भीतर जब-तब भारतीय संस्कार जाग उठते हैं। इस संस्कार में मनुष्यता, जान-पहचान, पड़ोसियों से सहृदयता, मेल-जोल और मृत व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति का भी एक कोना होता है, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो। जया विदेशी परिवेश में यह देखकर हैरान है कि यहाँ पड़ोसी एक-दूसरे से मिलने-जुलने की बात तो दूर, उनका नाम भी नहीं जानते। सब अलग-थलग अपने में सिमटे रहते हैं लगभग एलिनियेशन या आत्मनिर्वासन की हद तक यानी मनुष्य तो ये हैं लेकिन उनके पास आत्मा नहीं है। मेरे कहने का मतलब यह है कि बिल्कुल पड़ोस में मृत्यु जैसी बड़ी घटना भी उन्हें विचलित नहीं करती। वे इन घटनाओं से बिल्कुल निस्पृह बने रहते हैं।

जया की स्थिति कुछ अलग है। वह अपना देश तो बहुत पीछे छोड़ आई लेकिन संस्कार नहीं छोड़ पाई और इन्हीं संस्कारों के कारण उसमें मनुष्यता बची हुई है, जो पड़ोस में मृत्यु की घटना देखकर विचलित होती है। इस छोटी कहानी के केन्द्र में एक लंबा बूढ़ा पड़ोसी है जिसे वह हर सुबह अखबार उठाते देखती है, संभवत: इसीलिए इस कहानी का शीर्षक 'अखबार वाला' है। इस कहानी में कोई कहानी नहीं है। पात्र भी लगभग नहीं हैं। कहानी लगभग घटना विहीन है। कहना चाहिए इस कहानी में कई पार्श्व छवियाँ हैं, जिन्हें पकड़ने की जया कोशिश करती है। किसी ने कहानी को 'अँधेरे की चीख' कहा था, कहा तो 'अँधेरे की कौंध' भी गया था लेकिन कहानी में वस्तुत: हम उस नए यथार्थ की तलाश करते हैं जिसे हम सब देखते तो हैं लेकिन महसूस नहीं करते। एक अच्छा कहानीकार यथार्थ की उस कौंध को अनुभूति के स्तर पर संवेदना के धरातल पर महसूस करने की कोशिश करता है। इसलिए भी कहानी में कहानी न होते हुए भी कहानीपन शेष रह जाता है। अब यह कहानीकार के कथाकौशल पर निर्भर करता है कि वह अपनी कल्पनाशक्ति से उस भयावह यथार्थ को हमारी आँखों के सामने अनावृत करे। सुदर्शन प्रियदर्शिनी ने जया जैसे पात्र के माध्यम से हमें विदेशी परिवेश के उस भयावह यथार्थ से, जहाँ पड़ोसी की मृत्यु से भी हम संवेदित नहीं होते, हमारी मृत मनुष्यता को जगाने का प्रयास किया है। इस कहानी में जैसा ऊपर कहा गया है, जया में भारतीय संस्कार हैं लेकिन वह इन संस्कारों से मुक्त होने की कोशिश नहीं करती बल्कि इन संस्कारों के कारण ही अपने मनुष्य होने के धर्म का निर्वाह करती है। वह देखती

है कि विदेश में प्राय: पड़ोस में सन्नाटा फैला रहता है क्योंकि हम एक-दूसरे को जानने की कोशिश नहीं करते हैं। कहानीकार ने लिखा भी है-'आस-पड़ोस से ग्राहक और दूकानदार जैसा रिश्ता उसे काटता ही है लेकिन आदत बनती जा रही है। हेलो-हाय स्टिक नोट की तरह एक तरफ से उघड़ी, दूसरी तरफ से चिपकी सी मुस्कान व्यक्ति के अस्तित्व को समाप्त कर देती है। अपने आप पर केन्द्रित यह समाज कितना बेलाग और बेगाना है।' यहाँ एक बात का उल्लेख करना मुझे ज़रूरी लगता है जहाँ अन्य अधिकांश प्रवासी लेखक आधुनिकता की आंधी में बहते हुए भारतीय संस्कारों से मुक्ति का प्रयास करते हैं, इस कहानी में वैसा नहीं होता। कहानी के आरंभ के कुछ वाक्य देखिए-'जया ने ज्यों ही सुबह उठकर खिड़की पर छितरी ब्लाइंड का कान मरोड़ा, उजाला धकियाता हुआ अंदर घुस आया। इस उजाले के साथ-साथ हर सुबह एक सन्नाटा भी कमरे के कोने में दुबका पड़ा-उठ खड़ा होता था।

इतने वर्षों के बाद आज भी दूर अपनी खिड़की से झाँकता बरगद का पेड़, चिड़ियों की चहचाहाट, रंभाती गाएँ, पड़ोसी के चूल्हे से उठता उपलों का गंधित धुआँ, मिट्टी की कुल्ली में उबलती चाय का पानी-मन के किसी कोने में सुबह की दूब से उभर आते और सारी सुबह पर जैसे अबूर छिड़क देते। अन्यथा इस सड़क पर न कोई आहट, न ट्रेफ़िक की धमाधम, न चिल्लपौं, न स्कूल जाने वाली बच्चों की मीठी भोली चिटकोटियाँ....उसकी हर सुबह एक अधूरेपन के ग्रहण से ग्रसित हो जाती ....।'

यहाँ एक तरफ विदेशी परिवेश में फैला अछोर सन्नाटा है तो दूसरी तरफ वर्षों पहले पीछे छूटे गाँव की एक अद्भुत हार्दिक तस्वीर। जहाँ पड़ोसी के घर से धुआँ उठ रहा है, गाय रंभा रही है और चिड़िया चहचहा रही है। जया यह देखकर हैरान है कि पीछे छूटे देश और विदेश के इस परिवेश में कितना अंतर है ?वह एक अंतर्द्वंद्व से जूझती रहती है और उसके मन में तरह-तरह के प्रश्न उठते रहते हैं। वह विदेशियों की तरह पड़ोसियों से अलग-थलग नहीं रहना चाहती। वह उनका नाम, काम, पारिवारिक संबंधों के बारे में जानकारियाँ लेना चाहती है। उनके साथ हाय-हेलो करना चाहती है लेकिन उसके भीतर एक संकोच और झिझक है। एक बार ऐसा भी हुआ कि कार में चाबी अंदर छूट गई थी,

इतने वर्षों के बाद आज भी दूर अपनी खिड़की से झाँकता बरगद का पेड़, चिड़ियों की चहचाहाट, रंभाती गाएँ, पड़ोसी के चूल्हे से उठता उपलों का गंधित धुआँ, मिट्टी की कुल्ली में उबलती चाय का पानी-मन के किसी कोने में सुबह की दूब से उभर आते और सारी सुबह पर जैसे अबूर छिड़क देते। अन्यथा इस सड़क पर न कोई आहट, न ट्रेफ़िक की धमाधम, न चिल्लपौं, न स्कूल जाने वाली बच्चों की मीठी भोली चिटकोटियाँ....उसकी हर सुबह एक अधूरेपन के ग्रहण से ग्रसित हो जाती ....।'

जिसके लिए उसने पड़ोसी की मदद भी ली।

इस छोटी कहानी के घेरे में जया के अतिरिक्त वह बूढ़ा है जिसे जया हर सुबह अखबार उठाते देखती है। दोनों के बीच एक दूरी है। न जान-पहचान है और न कोई आत्मीयता, फिर भी एक लगाव जैसा है। जया बार-बार चाहती है कि वह उसके करीब जाए और उसका नाम पूछ ले लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। मन ही मन जया इसके लिए स्वयं को धिक्कारती भी है। एक दिन उसे बूढ़े के मरने की ख़बर मिलती है। पड़ोस में शव को ले जाने वाला एक वाहन खड़ा है उसके इर्द-गिर्द एक-दो लोग हैं। इस स्थिति को किस तरह महसूस किया गया है देखिए-'जया का मरने वाले से कोई नाता कोई पहचान तक नहीं थी। नाता सिर्फ इतना था कि हर सुबह वह उस सामने वाले घर से एक लंबे-लंबोत्तरे चेहरे वाले सौम्य व्यक्ति को अखबार उठाते देखती ....कभी-कभी दूर से नज़रों का धुँधला सा टकराव होता और औपचारिकता से आधा उठा हुआ हाथ हेलो में हिलता। एक कल्पित सी मुस्कान शायद दोनों तरफ़ होती थी ....या नहीं . . .याद नहीं। बस इतनी सी पहचान थी, इतना सा नाता था। इस पहचान में कहीं भी अपनत्व या पड़ोसीपन नहीं था।'

इतनी छोटी सी पहचान की प्रतीति से उत्पन्न अनेक भावनाएँ इस कहानी में एक साथ उठती हैं। इन भावनाओं के घात-प्रतिघात से जया के मन में उत्पन्न मृत उस व्यक्ति के प्रति विह्वलता ही उसके मनुष्य होने की पहचान है। एक साथ वह क्या-क्या न सोच जाती है-'ओह! फिर सोच में डूब गई। गेट पर ठिठकी खड़ी थी। कपड़े बदलूँया यही पहनूँ ? क्योंकि अभी भी कहीं इच्छा थी वैन के अंदर झाँकर चेहरा देखने की . . .और सम्बन्धियों से गले मिलने की . . .किन्तु ये तो .... .डाइक्लीन वाले कपड़े हैं . . .डाइक्लीन करवाने पड़ेंगे . . .दूसरे ही क्षण जया ने अपने आप को धिक्कारा . . .वह भी पहाड़े पढ़ने लगी . . .वह धड़ाधड़ गेट से निकल कर सीधे वैन के पास पहुँच गई। शरीर तो अंदर रखा ही जा चुका था। वह लंबा, छरहरा, लंबोत्तरे मुँह वाला व्यक्ति नहीं, अब केवल शरीर था जिसे अंतिम बार देखने का अवसर भी मिट चुका था।'

जया के भीतर जो तूफ़ान मचा है, उसमें एक तरफ पश्चाताप है तो दूसरी तरफ मनुष्य होने के नाते अपना धर्म न निबाहने की आत्मग्लानि और पीड़ा। जया भीतर ही भीतर जिस अंतर्द्वंद्व से गुज़रती है, उससे साफ़ पता चलता है कि

अख़बार वाला वह व्यक्ति सचमुच उसका पड़ोसी था जिसे जानने-पहचानने से एक तरफ़ विदेशी परिवेश रोक रहा था तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कार के कारण उससे उसकी आत्मीयता हो गई थी, बिल्कुल पीछे छूटे अपने गाँव में मरने वाले व्यक्ति की तरह। भले मृत बूढ़े अखबार वाले से उसका कोई परिचय नहीं था लेकिन उसके होने से हर सुबह सन्नाटा टूटता ज़रूर था। यही कारण है कि यह कहानी हमारे ऊपर से यूँ ही नहीं गुज़र जाती बल्कि हमें भीतर तक स्पर्श करती है। आज जैसी कहानियाँलिखी जा रही हैं उसमें बाहरी रूप-रंग के साथ शिल्प की चमक तो खूब होती है, लेकिन जो नहीं होता है, वह कहानीपन है। इस कहानी की यह विशेषता है कि उपर से देखने पर यह सपाट लगती है लेकिन कहानी से गुज़रते वक्त यह अहसास हुए बिना नहीं रहता कि घटना और पात्रों के अभाव में भी सचमुच कोई ऐसी कहानी लिखी जा सकती है जो आपके मन-प्राण को छू ले। मेरी तरह इस कहानी को पढ़कर पाठक भी इसे पसंद करेंगे और एक अविश्वसनीय कहानी के रूप में याद रखेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

*

महादेवी वर्मा

(जन्म: २६ मार्च १९०७,निधन: ११ सितम्बर १९८७)

महादेवी वर्मा छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। निराला ने उन्हें हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती भी कहा है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वर्ष 2007 उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया गया। उन्हें साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है।

मैं नीर भरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झारिणी मचली !

मेरा पग-पग संगीत-भरा
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा
नभ के नव रंग बुनते दुकूल
छाया में मलय-बयार पली।

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल
रज-कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन-अंकुर बन निकली!

पथ को न मलिन करता आना
पथ-चिह्न न दे जाता जाना;
सुधि मेरे आगन की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली!

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही-
उमड़ी कल थी, मिट आज चली!

*

नुसरत मेहदी की पाँच ग़ज़लें

परिचय:
सचिव, मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी
लेख, कहानियां, ड्रामा स्क्रिप्ट राइटिंग ।
रेडियो, टेलीविजन के कार्यक्रमों जैसे ड्रामा, मुशायरा, वार्ता इत्यादि में सहभागिता ।
राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, कार्यशालाओं एवं मुशायरों में सहभागिता एवं साहित्यिक यात्राएँ।
काव्य संग्रह–साया साया धूप, आब्ला पा , इन्तेखाबे सुखन, 1857 जंगे आजादी
पता – एफ– 9/4 ,चार इमली , भोपाल 462016
ई–मेल– nusratmehdi786@gmail.com

1

वक़्त की गोद से हर लम्हा चुराया जाये
इक नई तर्ज़[1] से दुनिया को बसाया जाये

इंक़लाबात[2] को रहबर की ज़रूरत क्या है
अपने माहौल को तहरीक[3] बनाया जाये

झुक के मिलने से अगर अमनों सुकूँ क़ायम हो
मसअला अपनी अना को न बनया जाये

घूँट दर घूँट जो इंसाँ का लहू पीती है
ऐसी नफ़रत को मुहब्बत से मिटाया जाये

क़ैद हैं जिसमें तरक़्क़ी की हज़ारों राहें
ऐसे ज़हनों को सदा[4] दे के जगाया जाये

अज़्म[5] सच्चा हो तो क़दमों में है मंज़िल 'नुसरत'
बस ज़माने को अमल करके दिखाया जाये

*

1 ढंग 2 क्रान्ति 3 आन्दोलन 4 आवाज़ 5 इरादा / हौसला

2

जो मुश्किल रास्ते हैं उनको यूँ हमवार[1] करना है
हमें जज़्बों की कश्ती से समन्दर पार करना है

हमारे हौसले मजरूह[2] करना चाहते हैं वो
हमें सूरज के रुख़ पर साया–ए–दीवार करना है

जो थक कर सो गये है वो तो ख़ुद ही जाग जायेंगे
अभी जागे हुये लोगों को बस बेदार[3] करना है

उठा लो हाथ में परचम[4] मुहब्बत के परस्तारों[5]
चलो नफ़रत की दीवारें अभी मिस्मार[6] करना है

जिहालत[7] के अंधेरों से निपटने के लिये 'नुसरत'
चिराग़ों का हमें एक कारवाँ तैयार करना है

*

1 समतल 2 घायल 3 जगाना 4 झंडा 5 चाहने वालो 6 ध्वस्त करना 7 अज्ञानता

3

कतरा के ज़िन्दगी से गुज़र जाऊँ क्या करूँ
रुसवाईयों के ख़ौफ़ से मर जाऊँ क्या करूँ

मैं क्या करूँ के तेरी अना को सुकूँ मिले
गिर जाऊँ, टूट जाऊँ, बिखर जाऊँ क्या करूँ

फिर आके लग रहे हैं परों पर हवा के तीर
परवाज़[1] अपनी रोक लूँ डर जाऊँ क्या करूँ

जंगल में बेअमान[2] सी बैठी हुई हूँ मैं
आवाज़ किस को दूँ मैं किधर जाऊँ क्या करूँ

क्या हुक्म आपका है मेरे वास्ते हुज़ूर
जारी सफ़र रखूँ के ठहर जाऊँ क्या करूँ

कब तक सुनूँ बहार में ख़ुशबू की दस्तकें
क्यूँ ऐ ग़मे हयात सँवर जाऊँ क्या करूँ

*

1. उड़ान 2. बसहारा

4

हमने सोचा है ज़माने का कहा क्यों माने
तै–शुदा[1] ज़िन्दगी जीने की अदा क्यों माने

ये मिरा दौर रिवायात[2] का पाबन्द नहीं
जो हमेशा से यहाँ होता रहा क्यों माने

कितनी सदियों की अना टूट के बह निकली है
अश्क था आँख से बस यूँ ही गिरा क्यों माने

उसके माथे की चमकदार शिकन में हम हैं
वो कहे लाख हमें भूल चुका क्यों माने

आसमानों की बुलन्दी पे भी हक़ दर्ज किया
ये ज़मीं हमसे न सँभलेगी भला क्यों माने

*

1 तय किया हुआ 2 पुरानी परंपरा

5

आप शायद भूल बैठे हैं यहाँ मैं भी तो हूँ
इस ज़मीं और आस्माँ के दरमियाँ मैं भी तो हूँ

हैसियत कुछ भी नहीं बस एक तिनके की तरह
फ़िक्रो फ़न के इस समन्दर में रवाँ[1] मैं भी तो हूँ

बेसबब बेजुर्म पत्थर शाहज़ादी बन गई
बस यही थी इक सदा–ए–बेज़बाँ[2] मैं भी तो हूँ

आज इस अंदाज़ से तुमने मुझे आवाज़ दी
यकबयक मुझको ख़्याल आया कि हाँ मैं भी तो हूँ

तेरे शेरों से मुझे मन्सूब[7] कर देते हैं लोग
नाज़[8] है मुझको जहाँ तू है वहाँ मैं भी तो हूँ

रू ठना क्या है चलो मैं ही मना लाऊँ उसे
बेरुख़ी से उसकी 'नुसरत' नीमजाँ[9] मैं भी तो हूँ

*

1. बहना 2. गूँगी आवाज़ 7. सम्बद्ध करना जोड़ना 8. गर्व 9. अधमरी

൭भाषांतर൫

मूल ओड़िया: राजेंद्र किशोर पंडा **हिन्दी अनुवाद: संविद कुमार दाश**

कवि परिचय: राजेंद्र किशोर पंडा भारतीय प्रशासनिक सेवा के सेवानिवृत अधिकारी व ओड़िया भाषा के विशिष्ट कवि हैं। शाणित व्यंग्य, बिम्ब और प्रतीकों के प्रयोग में माहिर माने जाते हैं। आपके 15 काव्य संग्रह तथा रचना समग्र 'सादा पृष्ठ' प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय सम्मान व पुरस्कारों से सम्मानित।

बिटिया के नाम एक कविता

जाना है दूर बहुत दूर।
किसे मान किये हो बिटिया मेरी, गुड़िया रानी?
तेरे रूठन के चौखट के आगे तेरा इन्तज़ार कर रहा है जीवन
खोल दे कपाट, आ, जाना है दूर बहुत दूर
जा, माँ, तू तो घर बसायेगी घर।।
कल्पवृक्ष हुआ, यह सोच लेना ही
है लगभग कल्पवृक्ष होना।
सोच लेना।।
छुईमुई सी बंद हो सिकोड़े
संकरी बन रहोगी क्यों?
स्पर्श मात्र से खड़े होना सीधे, जैसे पल्लव,
खिल जाना, लहराना,
पसार देना फूलों के समाहार, फल-भार, नीड़ पंछी के डाली-डाली
फिर कुछ काँटे के संभार, पसार देना...
देना और दिलवाना, अच्छे पद बोलना।।
तेरे आकाश में शकुन उड़ेंगे,
गिद्ध मँडरायेंगे पंख फड़कायेंगे
लहुलुहान होगी कभी तू मधु-मुहान भी होगी।।
कितनी चाहत से पकाये परोसे स्वादिष्ट व्यंजन को
थू थू कर दे कोई प्रियजन,
कोह को दबाये स्मित-हास्य देना
अमृत की कटोरी तेरी विष नहीं बन जायेगी, बिटिया,
अमृत तो कभी जूठन होता नहीं, बिटिया!
योग्यतम देखे अर्पित करना।
कहानी के बूढ़ी असुरन
एक पैर को चूल्हे में डाले, जलाये
दूसरे को सेंकने जैसी तू भी जिंदा रहना।।
भूमि को फट जा कभी मत बोलना, माँ,
दब जायेगा आकाश।।
गर्म तवे पर तल रही मछली जैसे,
अँधेरा ही दीवार जहाँ, छत जहाँ, बिछौना जहाँ
वहाँ चाँद भी काला, तेरी वहीं रात गुज़ार देना
शरत के चाँदनी रात।
सुबह नींद से भारी आँखों में बगीचे में आये देखना
पर्ण-गुच्छ के कोने में
ऊर्णा-जाल में ओस की बूँदें
हर बूँद में झिलमिल सूरज के बिंब...
मृदु पवन झोंके से थिरकी जाल यह सोचते सोचते
नज़र पड़ जायेगी शिकार-रत रत्न-मकड़ी के ऊपर,
माया घनघोर यह संसार बहत विचित्र, माँ,
छटपटाती पतंग की जगह खुद को रख अनुभव कर
देखेगी तू सिहर उठी है
यन्त्रणा में जीतनी
ततोधिक उल्लास में !!
सौ शरत रहना, बूढ़ी मत होना बिटिया!
कोसना मत, खुद को नहीं न नियति को,
कितना महीन, कितना सूक्ष्म तेरा जीवन
खो जायेगी कविता, चहल जायेगी, विलीन हो जायेगा स्वप्न।
अकथ दु:ख में भी
भूमि को फट जा कभी मत कहना, माँ,
दब जायेगा आकाश।।
हो सके तो, थन-मय हो जाना
खुद को थोड़ा उखार देना।
खरोंच में पाताल-गंगा की फुहार, माँ,
अँधेरा घना हो पाषाण हो के विदीर्ण हो जाते ही
सिंदुरी आकाश में अरुणोदय का दृश्य।।
भूमि को फट जा कभी मत बोलना बिटिया,
हो तो देवकी जैसी खुद फट जाना
ईश्वर के जन्म के लिये द्वार खोल देना।।

*

प्रिय सह-कवि

कलम के लिये बल्लम उठायें क्यों ?
एक बूँद एक कण एक दाना-
वसुधा को इनसान को
क्या फिर दे पाये हैं नया?
सद्य तोड़े हुये फूल को जोड़ पाये हैं
ताने के साथ? आँसू को लौटा पाये हैं आँखों में?
कुछ एक मुट्ठी में लिये उठाये
जा : बोल उड़ाना हुआ है सृष्टि के बाहर ?
कविता क्या छू पायी उसकी संभावना को ?
क्या लगता नहीं कभी कभी-
एक पृष्ठ-बहुल पराजय है जीवन
जिसके हर अध्याय हर परिच्छेद हर वाक्य में
दृष्टिभ्रम से दिखता है केवल एक ही शब्द -विजय
यहाँ हारजीत नहीं, साम्राज्य नहीं, सिंहासन नहीं
शिखर बोल कुछ भी नहीं
कुहनी के बल झाँको नहीं, आओ,
हाथ मिलाओ, मिलाओ हृदय।
धान की बाली में और दूध,
रेशम के कीड़े में और रेशम
अरणी के अंदर और आग
गन्ने के अंदर, मधु के अंदर और मिठास
शलप वृक्ष में ज़्यादा रस
आकाश के अंदर और नीलाभ, और चंद्रिका
इनसान के अंदर और मानविकता
भर दो भर दो बोल
आज्ञा दे सकते नहीं पर, प्रार्थना करें, आओ।
कलम झुक जाये तो बल्लम उठाये क्यों ?
स्वेच्छा से जलती है और बुझ जाती है अंदर की आग।
कविता युद्ध नहीं; है प्यार,
खेल हमारे आरोहण नहीं; रीले-
भागे भागे एक निर्दिष्ट बिन्दु पर
अपेक्षमाण तरुण खिलाड़ी को
कलम यह बढ़ा देने से हमारी छुट्टी !

*

भरत तिवारी की तीन कविताएँ

परिचय
जन्म : २६ अप्रैल १९७०
जन्मस्थान : फैज़ाबाद (अयोध्या) उत्तर प्रदेश
शिक्षा : विज्ञान में स्नातक, मैनेजमेंट में स्नातकोत्तर
संप्रति : पि. ऍम. टी. डिजाइंस (आर्किटेक्ट और इंटीरियर डिजाईन फर्म)
भाषा : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी
विधा : कविता, कहानी, लेख, नज़्म, गज़ल
प्रकाशन : देश की कई पत्र पत्रिकाओं और ब्लाग्स -जनसत्ता, पाखी, कृत्या, अनुभूति-अभिव्यक्ति, समालोचन, सिताब-दियारा, तेवर-ऑनलाइन, आखर कलश आदिमें सतत प्रकाशन. खुद के ब्लॉग का २०१० से सफलतापूर्वक संचालन.
संपादन-संस्थापक: शब्दांकन (ई-पत्रिका)
संपर्क : बी - ७१, त्रिवेणी, शेख सराय - १, नई दिल्ली - १७
घुमन्तू भाष : +९१ ९८११ ६६ ४७९६
ईमेल : mail@bharttiwari.com

आठवाँ परिंदा

आठवाँ
परिंदा बन रहा हूँ
परों पर कोपलें
उग रही हैं
सुना है
तुमने
सात आकाश बनाये हैं
मुझे आठवाँ देखना है
और तुम जिस आकाश से देखते हो
उसमें तुम्हें
देख लेता हूँ
खिड़की का पर्दा हटा कर .....
*

नए साहब सुनो !

कैसा नया माहौल
बना रहा हो ये
हाँ सुना है जब साहब होते थे
तब साहब ही साहब होते थे...
देखा है पर्दे पर
बेंत चटकाते
धप धप करते ऊँचे भारी जूतों को
किर्र किर्र करती मशीन
नोक को फैला
दिखाती थी साहबों की चालें ...
मगर अब तो
वो मशीन भी ना रही
तो क्या -
वो श्वेत श्याम माहौल
अब आँखों के सामने
रंग कर दिखाओगे ...
नए साहब लोगों सुनो
कुछ धहक रहा है
पहले धीमा था
मगर अब लील खायेगा तुमको
भूख खबर मवाद
खबर भूख की
भूखों की
भूख बेचने वालों की
नंगों की
नंगे होतों की
नंगे करे जातों की
जंगल की
जंगलियों की
जंगलराज की
जंगल बचाने की
डिमांड में है .....
जंगलियों की भूख बढ़ रही है
डिमांड की नियति - बदलते रहना
*

खबर

बेचने की
बिकने की
बिक गए की
देश की
विदेश की
देशप्रेम की
विदेश प्रेम की
डिमांड में है .....
प्रेम बिक रहा है
प्रेम की नियति - बदल रही है
अन्दर झाँकना बंद कर दिया
बाहर देखना मना है मैल -
चमड़ी का पोर पार कर गयी
रंग खून का और रंगत मवाद की
मवाद से चले खबरी-मसाला-मशीन
खबरों के प्रेमी..सब ...
*

डॉ. अनिता कपूर की तीन कविताएँ

परिचय
शिक्षा: एम.ए. हिन्दी, अँग्रेजी एवं संगीत (सितार), पी.एचडी (अँग्रेजी), पत्रकारिता में डिप्लोमा।
कार्यरत: अमेरिका से प्रकाशित हिन्दी समाचारपत्र यादें की प्रमुख संपादक। प्रकाशित कृतियाँ: बिखरे मोती, अछूते स्वर, ओस में भीगते सपने, कादंबरी, साँसों के हस्ताक्षर (कविता-संग्रह), दर्पण के सवाल (हाइकु-संग्रह)।
संपर्क : ४३५६ Queen Anne Drive, Union City, CA ९४५८७ SA
टेलीफोन: ५१०-८९४-९५७०
ईमेल: anitakapoor.us@gmail.com

नहीं चाहिए अब

तुम्हारे झूठे आश्वासन
मेरे घर के आँगन में फूल नहीं खिला सकते
चाँद नहीं उगा सकते
मेरे घर की दीवार की ईंट भी नहीं बन सकते
अब तुम्हारे वो सपने
मुझे सतरंगी इंद्रधनुष नहीं दिखा सकते
जिसका न शुरू मालूम है न कोई अंत
अब तुम मुझे काँच के बुत की तरह
अपने अंदर सजाकर तोड़ नहीं सकते
मैंने तुम्हारे अंदर के अँधेरों को
सूँघ लिया है
टटोल लिया है
उस सच को भी
अपनी सार्थकता को
अपने निजत्व को भी
जान लिया है अपने अर्थों कों भी
मुझे पता है अब तुम नहीं लौटोगे
मुझे इस रूप में नहीं सहोगे
तुम्हें तो आदत है
सदियों से चीर हरण करने की
अग्नि परीक्षा लेते रहने की
खूँटे से बँधी मेमनी अब मैं नहीं
बहुत दिखा दिया तुमने
और देख लिया मैंने
मेरे हिस्से के सूरज को
अपनी हथेलियों की ओट से
छुपाए रखा तुमने
मैं तुम्हारे अहं के लाक्षागृह में
खंडित इतिहास की कोई मूर्त्ति नहीं हूँ
नहीं चाहिए मुझे अपनी आँखों पर
तुम्हारा चश्मा
अब मैं अपना कोई छोर तुम्हें नहीं पकड़ाऊँगी
मैंने भी अब
सीख लिया है
शिव के धनुष को
तोड़ना
*

सीधी बात

आज मन में आया है
न बनाऊँ तुम्हें माध्यम
करूँ मैं सीधी बात तुमसे
उस साहचर्य की करूँ बात
रहा है मेरा तुम्हारा
सृष्टि के प्रस्फुटन के
प्रथम क्षण से
उस अंधकार की
उस गहरे जल की
उस एकाकीपन की
जहाँ तुम्हारी साँसों की
ध्वनि को सुना है मैंने
तुमसे सीधी बात करने के लिए
मुझे कभी लय तो कभी स्वर बन
तुमको शब्दों से सहलाना पड़ा
तुमसे सीधी बात करने के लिए
वृन्दावन की गलियों में भी घूमना पड़ा
यौवन की हरियाली को छू
आज रेगिस्तान में हूँ
तुमसे सीधी बात करने के लिए
जड़ जगत, जंगम संसार
सारे रंग देखे है मैंने
ए कविता .....
तुम रही सदैव मेरे साथ
जैसे विशाल आकाश,
जैसे स्नेहिल धरा,
जैसे अथाह सागर,
तुमको महसूस किया मैंने नसों में, रगों में
जैसे तुम हो गयी, मेरा ही प्रतिरूप
शब्दों के मांस वाली जुड़वा बहनें
स्वांत: सुखाय जैसा तुम्हारा सम्पूर्ण प्यार...
इसीलिए
आज मन में अचानक उभर आया यह भाव-
कि बनाऊँ न तुम्हें माध्यम
अब करूँ मैं सीधी बात तुमसे
*

खमियाज़ा

सुनो
जा रहे हो तो जाओ
पर अपने यह निशां भी
साथ ले ही जाओ
जब दोबारा आओ
तो चाहे, फिर साथ ले लाना
नहीं रखने है मुझे अपने पास
यह करायेंगे मुझे फिर अहसास
मेरे अकेले होने का
पर मुझे जीना है
अकेली हूँ तो क्या
जीना आता है मुझे
लक्ष्मण रेखा के अर्थ जानती हूँ
माँ को बचपन से रामायण पढ़ते देखा है
मेरी रेखाओं को तुम
अपने सोच की रेखाएँ खींच कर
छोटा नहीं कर सकते
युग बदले, मै ईव से शक्ति बन गई
तुम अभी तक अहम के आदिम अवस्था में ही हो
दोनों को एक जैसी सोच को रखने का
खमियाज़ा तो भुगतना तो पड़ेगा
*

प्रतिभा सक्सेना की तीन कविताएँ

परिचय

जन्मतिथि: ९ फ़रवरी, १९३८, भारत - मध्य-प्रदेश।

शिक्षा:एम. ए. (हिन्दी-साहित्य),पीएच.डी।

प्रकाशित पुस्तकें: सीमा के बंधन(कहानी संग्रह), घर मेरा है (लघु-उपन्यास),फ़ैसला सुरक्षित है (कुछ हास्य कुछ व्यंग्य)उत्तर-कथा(खंडकाव्य)।

ब्लाग लेखन:नवंबर २००९ से । सक्रिय ब्लाग .. शिप्रा की लहरें (कविता), लालित्यम् (ललित गद्य)।

सम्प्रति:आचार्य नरेन्द्रदेव स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर में शिक्षण. सन् १९९८ में रिटायर होकर, अधिकतर यू.एस.ए. में निवास।

जैसे तुम!

चाहती हूँ स्वीकृति -
कि मैं हूँ एक व्यक्ति
अभिव्यक्ति सहित।
उन्हीं क्षमताओं दुर्बलताओं संग आई हूँ,
बुद्धि-संवेगों की वही भेंट पाई हूँ,
जैसे तुम !

कितनी मुश्किलें,
पर फिर भी यहीं खड़ी हूँ।
जीवन की डोर थाम,
आर-पार लगातार गिरी और चढ़ी हूँ।
एक दीर्घ स्वर और धार कर आई,
वही गाँठ बाँध धारे हूँ !
हल्की हूँ तन से
मन से बहुत भारी हूँ।
नारी हूँ !

कभी भुक्ति,कभी मुक्ति,
शांति-भ्रांति या कि अहं,
भागते हो घबरा कर
अपने लिए तुम।
अपने नहीं,
अपनों के लिये हारी हूँ।
नारी हूँ !

थोड़ा-सा अधिक और -
कुंठित मत होना !
ममता के सूत कात घनताएँ वहने को,
सृजन की उठा-पटक,
दारुण-पल सहने को,
सहजनहीं मरती,
कठोर जान लाई हूँ !
व्यक्ति-अभिव्यक्ति सभी,
नहीं परछाईं हूँ !
जैसे तुम !

*

तीन बन्दर

आँख,कान और मुँह बंद किये,
बचते-भागते आ बैठे ड्राइंग रूम के अन्दर,
ये तीन बन्दर !

बैठे रहेंगे -
निश्चिन्त, आदर्श, परम अहिंसावादी,
यथार्थ से आँख मूँदे,महात्मा बने,
कि हम नहीं ऐसे
सारी दुनिया रहे चाहे जैसे !
बुराइयों से आँखें मूँद,
एकदम चुप रहो,
बंद रखो कान,
जो रहा है होने दो।

हमें क्या ?
फैलती रहें अनीतियाँ,
अमर बेल की तरह
छल्ले फँसाती शाखा-प्रशाखाओं में,
बिना किसी अवरोध के !
सच के कँटीले रास्ते से भाग,
हम यहाँ बैठे रहें,
अंध, मूक, बधिर बने।

परम संत बने आत्ममुग्ध
गज़ब का संयम ओढ़े,
सबसे तटस्थ,निर्लिप्त,
इस कमरे के अंदर।
ये तीन बंदर !
युग की महागाथा में लिखे होंगे
सबसे ऊपर इनके नाम,
हथियार छोड़ भागनेवालों में !

क्योंकि इस देश और इस काल में
सर्वग्रासी मिथ्यादर्शों के बीच,
परम संतोष से
जिये जा रहे हैं
आँख, कान और मुँह बंद कर,
ये तीन बंदर !

*

सद्य-स्नाता

झकोर-झकोर धोती रही,
सँवराई संध्या,
पश्चिमी घाट के लहरते जल में,
अपने गैरिक वसन।
फैला दिये क्षितिज की अरगनी पर
और उतर गई गहरे
ताल के जल में।

डूब-डूब, मल-मल नहायेगी रात भर।
बड़े भोर निकलेगी जल से।
उजले-निखरे, स्निग्ध तन से झरते
जल-सीकर घासों पर बिखेरती,
ताने लगाते पंछियों की छेड़ से लजाती,
दोनों बाहें तन पर लपेट
सद्य-स्नात सौंदर्य समेट,
पूरब की अरगनी से उतार उजले वस्त्र
हो जाएगी झट
क्षितिज की ओट !

*

कविताएँ

महाभूत चन्दन राय की विशिष्ट कविता

युवा लेखक! दैनिक जागरण तथा विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित, कविता -परमपूज्य पिताजी के कारण दैनिक जागरण का बेस्ट ब्लागर आफ वीक भी रहे हैं ! इंटरनेट पर यहां लेखन-
http://chandanrai.jagranjunction.com
http://facebook.com/poetchandanrai

किलकारियों का आर्तनाद

यह कैसा पैशाचिक भ्रूणखोर दौर हैं,
यांत्रिक-भयावह-कुत्सित-कुरूप,
अमानुषता से सड़ी,
कोढ़ग्रस्त मानसिकता का,
जिसमें चबा रही है दोगली इंसानियत,
बेजुबान गर्भ में अधखिले निर्दोष अंखुए,
निर्बोध मासूम कन्या भ्रूण,
चपर ! चपर!
कन्या भ्रूण के परजीवी प्रेत
दांत गड़ाए पी रहे हैं
गर्भ का खून
आह ! आह !
कोई इन्हें भी खा जाए!
गर्भपात के काले जहरीलेनाग,
डस रहे है गर्भाशय में मेक्रोडिल के दंश,
इनके क्रूर चंड कलेजे में जमतर है,
कैंसरिया ललक का विषाणु,
ये है इंसान की चमड़ी में भ्रूणभक्षी भेड़िए,
इनके गुणसूत्र में है प्रेतों का जीवाश्म,
इनके संक्रमण से सावधान !
इनकी खोपड़ी में है लैंगिक विभेद का खंडर,
जिसमे ढेरमढेर है फिमेल फिटस का कत्लेआम,
ये घिनोने व्याभिचारी है एक अश्लील गाली,
पुत्र प्राप्ति की सनक के लतखोर !
एक कचरे सी कबाड़ दुराचार की डस्टबिन में,
फिर कोई बदजात जाने क्यों छोड़ गया,
लावारिश मांस के गले हुए गुच्छे,
रेंक रहे उस परमानवता के फफूंद,
अघोरी सामाजिक जोंक के अपाहिज दुराग्रह,
पहचान में आ रहे है !
दो बेहद नन्हे बेकसूर हाथ,
दो ढुलमुलाते पैरों के चाँद,
और एक .. !
कहते हुए कलेजा फट रहा,
आत्मा काँप रही पिघल-पिघल,
उसे नोच रहे है कुछ कुत्ते, भ्रूणखोर !
स्त्रीत्व की हत्या,
दिल में चुभ रही हैं धड़कने भी,
और एक बेशर्म आप है,
के लड़खड़ाते भी नहीं !
समाज के अलम्बरदारों,
यह कैसा समाज तुम्हारा ?
क्या होतागर ?
जन्म ले लेती एक बेटी इबादत सी,
कुरान के आयत सी पाक-शफ्फाक,
ईशा की जननी मरियम सी,
गीता के श्लोको सी चिन्मय रूप,
रघुवर की माता कौशल्या सी,
जिसने पैदा किया पातशाहो को,
उनकी माँ एक बेटी ही थी,
गर ज़िंदा रहती तो,
एक और यशोदा फिर से पालती कोई कृष्ण !
एक बेटी ही तो महक रिश्तों में,
तुम्हारी भी माँ,
मेरे होने में, तुम्हारे होने में !
माँ मगर तुम तो जल्लाद नहीं,
रूपक हो ममत्व-वात्सल्य-बलिदान का,
फिर क्यों-कैसे घोंप दिया तुमने,
अपने ही गर्भ में गर्भपात का छुरा !
इस गुनहगारी के मुवक्किल हज़ारों है
इनकी कमजर्फी की कालिख पर
मुझे नहीं बहाना एक भी आँसू
पर माँ मुझे तुझसे ये उम्मीद ना थी !
मुझे देखना था अभी माँ,
तेरे कोख से निकल जीवन का जुगनू,
और सुननी थी मीठी लोरिया,
जिनसे सपनो के खिलौने खरीदने थे,
पीना था तेरे स्तनों से मातृत्व का अमृत,
अभी तो तेरी गोद में एक पहर चैन से भी सोना था
और मैं भटकी भी तो हूँ,
जाने कितने युगों से,
कितने ही जन्म के बाद मिला मुझे ये जन्म,
मै गर हूँ बेटी होने की गुनहगार,
तो पहले आसमा के फरिश्तों को सज़ादो !
हे तात !
तुम्हारे पितृत्व की प्यासी मैं,
क्यों प्यासा ही मुझे मार रहे,
वात्सल्य का दुधिया लाड़,
क्यों फट रहा परायेपन की कसैली प्रथाओं में ?
एक आलिंगन की प्यासी मैं,
तुमरे क्रोड्थ सुख को,
कर रही निवेदन तुमसे,
तुमरे हाथों में अब भाग मेरा,
काट धरो या प्यार करो !
पर कहीं भूल से भी,
प्रतिबिंबित न हो पितृत्व,
एक हत्यारी नब्ज,
बेवजह कुढ़ी बेटियोंसे !
मुझे समझने तो देते आँसुओं का अर्थ,
और खुलने देते पलकों की बंद सीप,
माटी का अपना कच्चा-गीला तन,
सेंक लेती बस ज़रा सा जिन्दगी की धूप में,
और सीख लेती बस दो ककहरे,
चींख और तड़प,
और जी लेती इस कलयुग में,
चार प्रदूषित धड़कन !
फिर ख़ुशी से तुम मारते मुझे,
घोंटकर-मरोड़कर या अंश-अंश काटकर
पर मुझे कमोबेश मरने का पता तो होता,
और मै विदा होती ख़ुशी-ख़ुशी,
तुम्हारे भ्रूणगिरोही समाज से !
प्रश्न महाभियोग चलाने का नहीं,
उस राक्षसी वृति की गिरफ्तारी का है,
कैसे परिवर्तित हो,
किलाकारियों के हत्यारे क्रूर मन,
आखिर कब तक जारी रहेगा,
चारित्रिक पतन का नंगा नाच,
कब तक रहेगा इंसान गिरावट के इस गटर में !
आत्मघाती आप,
क्यों समझते नहीं
कन्या भ्रूणनहीं है
तुम्हारे घर का वेस्ट मैनेजमेंट
कोढ़ी हो-हो मरोगे तुम
ले डूबेगा तुम्हे
किलकारियों का आर्तनाद !

*

हाइकु

हेराम समीप

हे प्रभु ! आज
मेरे घर फाके हैं
कोई न आए !

*

पड़ा अकाल
किसान की आँखों में
सहमा साल ।

*

मेरी कहानी-
अकाल में चिड़िया
दाना न पानी ।

*

रात गुज़ारें
रोटी की चर्चा कर
भूख को मारें

*

दुखिया साथी
न दे ज़्यादा सफ़ाई,
मैं तुझे जानूँ ।

*

गरीबी बोले-
''जब तक जियूँगी
साथ रहूँगी।''

*

नया स्वाँग ले
दुख बहुरुपिया
रोज़ आ जाए ।

*

हुई मुश्किलें
अब पर्वत भर
मैं राई भर ।

*

माँ बुनती है
सम्बन्धों का स्वेटर
नेह-धागे से ।

*

ख़्वाब के बच्चे
आँगन में मचाते
धमा -चौकड़ी ।

*

सेदोका

डॉ. भावना कुँअर

पल भर में
टूटकर बिखरे
सुनहरे सपने
किससे कहूँ
घायल हुआ मन
रूठे सभी अपने।

*

मन का कोना
ख़ुशबू नहाया -सा
सुध बिसराया- सा,
न जाने कैसे
भाँप गया जमाना
पड़ा सब गँवाना।

*

पुराने दिन
रंगीन तितली -से
मँडराते फिरते,
मन का कोना
खिल-खिल उठता
खुशबू से भरता।

*

धूप-सी खिली
अँधेरों को चीरती
वो मोहक मुस्कान
हर ले गई
गमों के पहाड़ को
मिला जीवन -दान ।

*

आज हवा में
कुछ अलग सी -ही
बात लगी है मुझे,
बीते वक़्त की
भूली हुई यादों की
सौगात लगी मुझे ।

*

माहिया

डॉ. हरदीप सन्धु

भावों का मेला है
इस जग- जंगल में
मन निपट अकेला है ।

*

ख़त माँ का आया है
मुझको पंख लगे
दिल भी हरषाया है ।

*

यह खेल अनोखा है
जग में हम आए
बस खाया धोखा हैं।

*

चलता कौन बहाना
मौत चली आई
बस साथ तुम्हें जाना ।

*

शब्दों का गीत बना
अँखियाँ राह तकें
तू दिल का मीत बना ।

*

अनजाने भूल हुई
जो दी ठेस तुम्हें
मुझको वह शूल हुई ।

*

ये गीत पुराना है
रूठ गया माही
तो आज मनाना है ।

*

बादल से जल बरसे
तन तो भीग गया
प्यासा ये मन तरसे।

*

जीवन इक सपना है
आँख खुली, देखा
कौन यहाँ अपना है ।

*

घर जो यह तेरा है
नाज़ुक शीशे का
इक रैन बसेरा है।

*

लघुकथाएँ

राजलीला

सुकेश साहनी

प्रजा बेहाल थी। दैवीय आपदाओं के साथ-साथ अत्याचार, कुव्यवस्था एवं भूख से सैकड़ों लोग रोज़ मर रहे थे, पर राजा के कान पर जूँ तक नहीं रेंग रही थी। अंततः जनता राजा के खिलाफ सड़कों पर उतर आई। राजा और उसके मंत्रियों के पुतले फूँकती, 'मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!!' के नारे लगाती उग्र भीड़ राजमहल की ओर बढ़ रही थी। राजमार्ग को रौंदते कदमों की धमक से राजमहल की दीवारें सूखे पत्ते-सी काँप रही थीं। ऐसा लग रहा था कि भीड़ आज राजमहल की ईंट से ईंट बजा देगी।

तभी अप्रत्याशित बात हुई। गगनभेदी विस्फोट से एकबारगी भीड़ के कान बहरे हो गए, आँखें चौंधिया गईं कई विमान आकाश को चीरते चले गए, खतरे का सायरन बजने लगा। राजा के सिपहसालार पड़ोसी देश द्वारा एकाएक आक्रमण कर दिए जाने की घोषणा के साथ लोगों को सुरक्षित स्थानों में छिप जाने के निर्देश देने लगे।

भीड़ में भगदड़ मच गई। राजमार्ग के आसपास खुदी खाइयों में शरण लेते हुए लोग हैरान थे कि अचानक इतनी खाइयाँ कहाँ से प्रकट हो गईं

सामान्य स्थिति की घोषणा होते ही लोग खाइयों से बाहर आ गए। उनके चेहरे देशभक्ति की भावना से दमक रहे थे, बाहें फड़क रही थीं। अब वे सब देश के लिए मर मिटने को तैयार थे। राष्ट्रहित में उन्होंने राजा के खिलाफ़ अभियान स्थगित कर दिया था। देश -प्रेम के नारे लगाते वे सब घरों को लौटने लगे थे।

राजमहल की दीवारें पहले की तरह स्थिर हो गई थीं। रातों-रात राजमार्ग के इर्द-गिर्द खाइयाँ खोदने वालों को राजा द्वारा पुरस्कृत किया जा रहा था।

*

आदमी के बच्चे

प्रेम जनमेजय

तुम कौन हो?

रामू।

रामू तुम्हारा भी नाम होता है क्या? पापा तो तुम लोगों को सिर्फ़ गरीब कहते हैं। मेरे पापा कहते हैं गरीब लोग गंदे रहते हैं। तुमने इतने गंदे कपड़े क्यों पहने हैं?

पैसे नहीं है।

तुम नहाते भी नहीं हो क्या? हमारा तो टामी भी रोज़ नहाता है, उसे हमारी आया नहलाती है, मुझे भी वही नहलाती है। तुम्हारी आया नहीं नहलाती?

आया! आया कौन?

वो जो घर का सारा काम करती है....नौकरानी! तुम्हारे यहाँ नौकरानी नहीं है क्या?

है, मेरी माँ नौकरानी है....वो ही घर का सारा काम करती है। दूसरों के घर में भी काम करती है।

तुम सारा दिन कैसे खेलते हो? तुम्हारे यहाँ ट्यूटर नहीं आता है क्या? होमवर्क नहीं करना पड़ता क्या?

नहीं बापू के पास स्कूल भेजने के लिए पैसे नहीं हैं। टोली,कालू, गोली,रमती-कोई भी स्कूल नहीं जाता है । बड़े होकर हमें मजूर जो बनना है। बापू कहते हैं, मजूर बनने के लिए पढ़ना नहीं होता है। बस बड़ा होना होता है।

पापा मुझे तुम्हारे साथ खेलने को सख्त मना करते हैं। कहते हैं तुम लोग गटर में पलने वाले कीड़े हो। पर तुम तो मेरे जैसे लगते हो, बस, गंदे कपड़े पहनते हो। हमारी टीचर कहती हैं, आदमी का खून लाल होता है, तुम्हारा भी है क्या?

हाँ, देखो। और उसने अभी-अभी खेल में लगी चोट से रिसता खून का रंग दिखा दिया।

अरे! तुम्हें तो चोट लगी है, जल्दी डिटॉल से साफ कर लो, डॉक्टर से टिटनेस का टीका लगवा लो, नहीं तो सैप्टिक हो जाएगा।

कुछ नहीं होगा, ऐसे तो रोज़ लगती रहती है।

तुम तो बहुत बहादुर हो। मुझे पापा से बहुत डर लगता है। वो मुझे हरदम पढ़ने को कहते हैं, घर के अंदर खेलने को कहते हैं। बाहर नहीं जाने देते हैं। पापा जितना बड़ा होकर मैं तुम्हारे साथ खेलने बाहर आ सकूँगा।

नहीं, तब भी तुम नहीं आ सकोगे।

क्यों?

तब तुम पापा बन जाओगे।

*

RBC Dominion Securities

Professional wealth management since 1901

Hira Joshi, CFP
Vice President & Investment Advisor

RBC Dominion Securities Inc.
260 East Beaver Creek Road
Suite 500
Richmond Hill, Ontario L4B 3M3

Tel: (905) 764-3582
Fax: (905) 764-7324
1 800 268-6959

hira.joshi@rbc.com

लघुकथाएँ

हिम्मत

दीपक 'मशाल'

डॉक्टर ने थोड़ी निराशा प्रकट की और उसको अकेले में बुलाकर समझाया- "देखो रहीम मैंने अपनी तरफ से पूरी कोशिश कर ली है, मेरे पास आपके अब्बा के साथ-साथभर्ती हुए इस तरह के केसेज में से कोई भी ऐसा नहीं है जो आज की तारीख में ठीक से चल ना पाता हो। ये मेरे लिए भी तकलीफ का विषय है और सच तो यही है कि इनके पैरों में पूरी जान आ चुकी है, ज़रूरत है सिर्फ हिम्मत जुटाकर कोशिश करने की...."

"मैं अपनी तरफ से फिर कोशिश करूँगा डॉक्टर साब"

"ये कुछ एक्सरसाइज़ हैं, जो इन्हें करनी होंगी और पूरी कोशिश करो रहीम, न हो तो सख्ती से काम लो और कोई चारा नहीं है"

घर आकर अगले दिन सुबह से ही रहीम ने गुजारिश की-

"अब्बा जान, उठिए और थोड़ा चलने की कोशिश कीजिए"

"नहीं बेटा, ये पैर.... तो बेकार ही हो गया, हिलता भी नहीं...." अब्बा बिस्तर पर ही उठ तो गए; लेकिन उन्होंने रोनी सूरत बनाकर लड़खड़ाती ज़ुबान से असमर्थता ज़ाहिर की।

"बंद कीजिए नौटंकी, आप चुपचाप उठकर चलते हैं कि नहीं ?" -रहीम ने आँखें तरेरी और आवाज़ में गुस्सा भरकर कह तो दिया लेकिन यह उसके लिए इतना आसान न था। अट्ठाईस साला रहीम साल भर पहले तक जिन अब्बा से नज़रें मिलाने में भी सूखे पत्ते की तरह काँपता हो, उन्हें आँखें तरेरकर डाँटते हुए उसका कलेजा फट गया।

'चलते हैं कि नहीं...' कहते-कहते उसने हिम्मत हार दी, वह अब्बा के कमज़ोर पैर पर सर और हाथ रखकर बिलख-बिलख कर रो दिया। अब्बा के आँखों में आँसू तो थे; लेकिन शिकवा न था। उन्होंने अपने पास रखी बेंत को एक हाथ से कसकर पकड़ा और दूसरे हाथ की हथेली रहीम के सर पर रखकर प्यार से उसे पुचकारते हुए कहा- "चलो बेटा।"

*

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545

Service to humanity

लम्बी कहानी

नरेन्द्र कोहली

वरांडे का वह कोना

(हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरेन्द्र कोहली की धारावाहिक रूप में प्रकाशित लम्बी कहानी की अंतिम किश्त।)

नरेन्द्र कोहली

जन्म: 6 जनवरी, 1940 जन्म भूमि सियालकोट (अब पाकिस्तान में)
शिक्षा: एम.ए., पी.एच.डी
उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, व्यंग्यकार तथा निबंधकार
प्रकाशित कृतियाँ:
व्यंग्य: एक और लाल तिकोन,पांच एब्सर्ड उपन्यास, आश्रितों का विद्रोह, जगाने का अपराध,परेशानियाँ,गणतंत्र का गणित, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियाँ, समग्र व्यंग्य -मेरे मुहल्ले के फूल, समग्र व्यंग्य -सब से बड़ा सत्य वह कहाँ है, आत्मा की पवित्रता।
कहानी संग्रह:परिणति, हानी का अभाव, दृष्टि देश में एकाएक, शटल, नमक का कैदी, निचले फ्लैट में, नरेन्द्र कोहली की कहानियाँ, संचित भूख।
उपन्यास: पुनरारंभ, आतंक, साथ सहा गया दु:ख, मेरा अपना संसार, दीक्षा, अवसर, जंगल की कहानी, संघर्ष की ओर युद्ध (दो भाग),अभिज्ञान, आत्मदान, प्रीतिकथा, महासमर- 1 (बंधन), महासमर - 2, (अधिकार) , महासमर - 3 (कर्म), तोड़ो कारा तोड़ो - (निर्माण), महासमर - 4 (धर्म), तोड़ो कारा तोड़ो - 2 (साधना), महासमर - 5(अंतराल), क्षमा करना जीजी!, महासमर - 6 (प्रच्छन्न), महासमर - 7 (प्रत्यक्ष), महासमर - 8 (निर्बंध), तोड़ो कारा तोड़ो - 3, तोड़ो कारा तोड़ो - 4, तोड़ो कारा तोड़ो - 5।
संकलन: मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, समग्र नाटक, समग्र व्यंग्य , समग्र कहानियाँ भाग-1, अभ्युदय (दो भाग) - (रामकथा, दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध (भाग १ एवं २) का संकलित रूप, नरेन्द्र कोहली: चुनी हुई रचनाएं , नरेन्द्र कोहली ने कहा (आत्मकथ्य तथा सूक्तियाँ), मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएं, समग्र व्यंग्य-1 (देश के शुभचिंतक), व्यंग्यसमग्र व्यंग्य-2 (त्राहि-त्राहि), समग्र व्यंग्य-3 (इश्क एक शहर का), मेरी तेरह कहानियाँ, न भूतो न भविष्यति (उपन्यास), स्वामी विवेकानन्द-जीवन, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कुकुर तथा अन्य कहानियाँ (बाल कथाएँ) ।
नाटक-शंबूक की हत्या, निर्णय रुका हुआ, हत्यारे, गारे की दीवार, संघर्ष की ओर, किष्किंधा, अगस्त्यकथा, हत्यारे।
आलोचना: प्रेमचंद के साहित्य सिद्धांत (शोध-निबंध), हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत (शोधप्रबंध), कुछ प्रसिद्ध कहानियों के विषय में (समीक्षा), प्रेमचंद (आलोचना), जहाँ है धर्म, वहीं है जय (महाभारत का विवेचनात्मक अध्ययन)।
बाल कथाएँ: गणित का प्रश्न (बाल कथाएँ), आसान रास्ता (बाल कथाएँ), एक दिन मथुरा में (बाल उपन्यास), अभी तुम बच्चे हो (बाल कथा), कुकुर (बाल कथा), समाधान (बाल कथा)।
अन्य रचनाएँ: किसे जगाऊँ ? (सांस्कृतिक निबंध), प्रतिनाद (पत्र संकलन), नेपथ्य (आत्मपरक निबंध), माजरा क्या है? (सर्जनात्मक, संस्मरणात्मक, विचारात्मक निबंध), बाबा नागार्जुन (संस्मरण), स्मरामि (संस्मरण)।

पता: डॉ. नरेन्द्र कोहली, 175 वैशाली, पीतम पुरा, दिल्ली-34, भारत।

narendra.kohli@yahoo.com

....पिछले अंक से जारी

मेरा मन जैसे जड़ हो गया। इस विवेकी को कोई लड़की मन खोल कर कैसे दिखाएगी ?

''कैसी हो ?'' तुम्हारा स्वर औपचारिक था।

''ठीक हूँ । तुमने व्यर्थ ही आने की तकलीफ की।'' मेरा स्वर तुमसे भी अधिक औपचारिक हो गया था।

तुमसे मेरा और कोई संबंध हो भी कैसे सकता था।

तुम्हें मालूम भी नहीं हुआ और मैं कई दिन तुम से रूठी रही। रूठने का सारा काल वही था, जब मैं अपनी अस्वस्थता के कारण कॉलेज नहीं जा पा रही थी; और इस बीच तुम से एक दिन भी भेंट नहीं हुई। कालेज से और भी किसी का मेरे घर आना-जाना नहीं हुआ, जो तुम्हें मेरे रूठने के विषय में बताता। ...

पर जब ज्वर-मुक्त हो कर मैं कॉलेज पहुँची तो तुम्हें देखते ही मेरा रोष पिघल गया। तब से आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि तुम्हें सामने देख कर मैं तुम से अप्रसन्न रह पाई होऊँ ।

तुम बड़े आत्मीय मित्र के समान मिले; प्रेमी के समान नहीं। जो कुछ उस रात गाड़ी में हुआ था ,उसके बाद भी तुम प्रेमी क्यों नहीं बने - यह मैं कभी समझ नहीं पाई। या तो तुमने मेरा भी वैसा ही तिरस्कार किया होता, जैसा प्रमिला का किया था, तो मैं मान लेती कि तुम मुझे पसंद नहीं करते। पर तुमने कभी मेरा तिरस्कार भी तो नहीं किया। तुम जिस आतुरता से मुझ से मिलते रहे हो, मेरे प्रति संवेदना जताते रहे हो, मेरी सहायता करते रहे हो - उन सब को देखते हुए मैं कभी मान ही नहीं पाई कि तुम मुझे पसंद नहीं करते।...

पर खैर कॉलेज में हम प्रतिदिन मिलते रहे। प्राय: कॉलेज आना-जाना भी इकट्ठे ही होता था। कई बार संध्या साथ नहीं होती थी। रास्ते भर हम दोनों ही साथ होते थे। उस दृष्टि से एकांत भी काफी था। ... फिर तुम मेरे घर आने लगे, मैं तुम्हारे घर जाने लगी। ... पर तुमने कभी भी प्रेमी का रूप नहीं अपनाया। मेरे रूप की प्रशंसा नहीं

की। कभी छेड़-छाड़ नहीं की। न कभी तुम भावुक हुए, न कभी तुम्हारे हाथ बहके न वाणी। ... तुमने अपनी मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं किया, कभी भी नहीं। तुम्हारे पैरों ने फिसलना तो जाना ही नहीं था, वे कभी डगमगाए भी नहीं।

तुम मुझ से मिलने को आतुर रहते थे। न मिल पाने पर परेशान भी होते थे। मेरी ओर से मिलने में बाधा होती तो अपना रोष प्रकट करते। तुम्हें मेरे साथ रहना अच्छा लगता था, मेरी संगति प्रिय थी तुमको। पर तुमने कभी नहीं सोचा कि तुम पुरुष हो और मैं नारी ? ... हम में स्त्री-पुरुष का आकर्षण भी हो सकता है, हम प्रेम भी कर सकते हैं, हम विवाह कर पति-पत्नी बन कर भी साथ रह सकते हैं।... यह सब क्यों नहीं आया, तुम्हारे मन में ? क्या तुम मेरी संगति मात्र से ही तृप्त हो जाते थे ? क्या मैं तुम्हें कभी उससे अधिक के योग्य नहीं लगी

उस दिन मैं उदास थी । बहुत उदास। इतनी उदास कि मैं तुम से छिपा भी नहीं पाई। कालेज में तुम मुझे देखते रहे और भांपते रहे। घर लौटते हुए, रास्ते में तुमने मुझ से पूछा,''क्या बात है केतकी, इतनी उदास क्यों हो ?''

वह दृश्य सजीव रूप में याद है मुझे आज भी।

''कुछ परेशानियां हैं घर की।'' मैंने टाला।

पर तुम टले नहीं, ''ज़रूरी नहीं कि तुम्हारी परेशानियों को मैं दूर कर सकूं, पर सुन तो सकता हूँ। संभवत: सांत्वना ही दे सकूं।'' तुमने रुक कर अन्वेषक दृष्टि से मुझे देखा था, ''वैसे बाई द वे, कोई गोपनीय बात है क्या ?''

''सार्वजनिक तो नहीं ही है।'' मैंने कहा, ''पर ऐसी गोपनीय भी नहीं है।''

''आत्मीय लोगों से गोपनीय न हो, तो मुझे बता दो।'' तुमने कहा था।

तुम्हारे शब्दों के प्रयोग पर मैं सदा ही रीझी थी। तुमने कितने संक्षेप में कितनी स्पष्टता से बात कह दी थी। तुम मेरे आत्मीय थे ... मुझे लगा था कि मैं इतने में ही संतुष्ट हूँ । तुम आत्मीय हो तो तुम से क्या छिपाना...

''बात यह है कि..'' और सहसा मैं इस तथ्य कि प्रति सजग हुई कि मैंने तुम्हें आज तक यह तो बताया ही नहीं था कि मेरी सगाई हो चुकी थी...

''क्या बात है ?''

डी.एम. मदान स्कूल से आने वाली सड़क, जहाँ के. रोड से मिलती है, हम वहीं एक किनारे खड़े हो गए थे, फुटपाथ पर एक वृक्ष की छाया में। तुम उत्सुकता और जिज्ञासा से मेरी ओर देख रहे थे और मैं समझ नहीं पा रही थी कि मैं कैसे और किन शब्दों में तुम्हें बताऊँ ।...

''यदि कोई असुविधा हो तो रहने दो ...।''

मैं चिंतित हो गई : कहीं ऐसा न हो कि मैं अपने असमंजस में कह न पाऊँ और तुम उसे मेरा अति व्यक्तिगत मामला मान कर अपना आग्रह ही छोड़ दो। फिर मैं किसे बताऊँगी ? मेरे मन का बोझ हल्का कैसे होगा ?...

''बात यह है विनीत ।'' मैंने कहा, '' कि मेरे जीवन में कभी एक दुष्ट ग्रह उदित हुआ था। उस ग्रह को मैं लगभग भूल चुकी थी, किंतु अकस्मात् ही वह धुंधलके में से बाहर निकल आया है। वह अभी मुझे तपा तो नहीं रहा, पर उसकी छाया मुझ पर पड़ रही है।...''

''स्पष्ट बताओ।'' तुमने बहुत धैर्य से कहा था।

''मैट्रिक पास करते ही, मेरे घर वालों ने मेरी सगाई कर दी थी।...''

तुमने कैसे तो मुझे देखा था, ''राधा पहले से ही कहीं अनुबंधित है... ''

आगे तुमने कुछ नहीं कहा था किंतु मैं समझ सकती थी कि तुम्हारे मन में क्या चल रहा था। कृष्ण से मिलने से पहले ही राधा का कहीं संबंध हो चुका था। शायद इसी लिए मथुरा जा कर कृष्ण ने पलट कर नहीं देखा।...

पर यह सब मेरा अनुमान ही था। तुमने ऐसा कुछ नहीं कहा।

तुमने कहा ''तो तुम्हारी सगाई हो चुकी है ?''

''हाँ ।''

मेरे मन का अपराधबोध बहुत प्रबल हो उठा - मैंने तुमसे आज तक यह सब क्यों छिपाया। पर मैंने छिपाया कहाँ ? इस बात को तो मैं स्वयं ही भुला बैठी थी। यह तो मेरे जीवन की एक ऐसी घटना थी, जिसे मैं एक दु:स्वप्न ही मानती थी।

''तुमसे मिलने से पहले के मेरे जीवन की कभी कोई चर्चा ही नहीं हुई।'' मैंने एक प्रकार से स्पष्टीकरण दिया था, ''और वैसे भी यह कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण बात तो थी ही नहीं...।''

''तो अब क्या हो गया ?'' तुमने पूछा था।

''उनका पत्र आया है कि मैं पहले ही बहुत पढ़ चुकी हूँ । वे नहीं चाहते कि मैं बी.ए. भी कर जाऊँ । उन्हें बी.ए. ; एम. ए. लड़की नहीं चाहिए।''

''कौन लोग हैं वे ?''

''कानपुर के पास एक कस्बा है - कन्नौज।''

''ऐतिहासिक कन्नौज।''

''हाँ वही। '' मैंने बताया, '' वहीं के हैं। लड़का मैट्रिक पास है; और किसी फैक्टरी में इलैक्ट्रिशियन है।''

''तुमने देखा है उसे ?'' तुमने पूछा।

''नहीं।'' मैंने बताया था, '' वह तो पिता जी की एक चचेरी बहन ने चर्चा चलाई थी। पिता जी ने 'हाँ ' कर दी। पिता जी तो आज भी मानते हैं कि बिरादरी में हमें उससे अच्छा लड़का नहीं मिलेगा; और बिरादरी से बाहर उन्हें अपनी बेटी की शादी करनी नहीं है।''

''तो समस्या क्या है ?'' तुमने बड़े निस्पृह भाव से पूछा था ।

''अरे, वे मेरी पढ़ाई छुड़ा रहे हैं।...'' पर यह नहीं कह पाई कि पढ़ाई छोड़ दी तो तुम से भी वियोग हो जाएगा। तुमसे रोज़ ऐसे मिलना कैसे संभव होगा ?...

''शादी कब की है ?'' तुम गंभीर थे।

''शादी की तो अभी कोई बात नहीं हुई है।''

''तो भूल जाओ, सब कुछ।'' तुमने कहा था।

''समस्या है कि पिताजी उन्हें क्या लिखें।''

''पिता जी पढ़ाई छोड़ने को कहते हैं ?''

''नहीं। पिता जी तो नहीं कहते।''

''तो जो उनके मन में आए, लिख दें।'' तुमने कहा था, ''लिख दें कि लड़की बी.ए. तो करेगी ही; और उसका मन हुआ तो एम.ए. भी करेगी।''

''पिता जी उन्हें नाराज़ करना नहीं चाहते।''

''यदि सच बोलना है तो दो में से एक को तो नाराज़ करना ही पड़ेगा - तुम्हें, या उन्हें। चुनाव पिता जी स्वयं कर लें।'' तुमने बहुत स्पष्ट कहा था, ''या फिर उन्हें कोई गोल-मोल बात लिख दें। या फिर मान लें कि उन्हें उन लोगों का वह पत्र मिला ही नहीं है।'' तुमने मेरी ओर देखा था, ''तुम अपनी पढ़ाई करो और भूल जाओ, इन बातों को। जब विवाह का अवसर आएगा, तब सोचना इन बातों को। और मेरी अपनी दृष्टि में तो संसार का कोई

पुरुष इतना श्रेष्ठ नहीं है, जिसको पति रूप में पाने के लिए स्त्री अपना विकास अवरुद्ध कर ले।''

जाने क्यों मुझे लगा कि पवित्र शास्त्र वाक्य भी किसी समय ऐसे ही किसी मुख से उच्चरित होते रहे होंगे। तुम ठीक ही कह रहे हो ...

''मानव जन्म का तो लक्ष्य ही एक है - आत्मविकास और फिर आत्मसाक्षात्कार।'' तुम कह रहे थे, ''समाज और राष्ट्र इसी लिए बने हैं कि हम लोग आत्मविकास करें। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी वे ही हैं, जो एक दूसरे के विकास में सहायक होते हैं। किसी के विकास में विघ्न खड़ा करने वाला तो शत्रु ही हो सकता है, क्योंकि विकास का ही दूसरा नाम सामर्थ्य है ...''।

जाने तुमने अपने मन की बात कही थी या कहीं पढ़ा हुआ वाक्य दोहरा रहे थे; किंतु मेरे जीवन का सत्य यही था। मेरे लिए वह पवित्र ईश्वरीय वाणी थी। मेरा विषाद धुल गया। ... मैंने उसी क्षण निर्णय किया कि अब अपने इस जीवन में तो मैं किसी की मानूँगी नहीं। मेरा भी लक्ष्य आत्मविकास ही होगा ...

पर घर पहुँच कर जब कुछ एकांत हुआ; और शांत मन से कुछ सोचने-समझने का अवसर मिला, तो मेरा अपना मन ग्लानि और अपराध-बोध से भर गया। ... मेरा मन मुझे बार-बार धिक्कार रहा था और बार-बार मुझ से पूछ रहा था कि मेरी सगाई हुई थी या नहीं ? मैं किसी की मंगेतर हूँ या नहीं ? ... और यदि हूँ तो तुम्हारे प्रति मेरे मन में ये सब भाव क्यों जागते हैं ? ... गाड़ी में मेरा मन इतना शिथिल क्यों हो गया था ?... और यदि मैं यह मान लूं कि मैं तुम में अनुरक्त हूँ तो फिर मैं किसी और की मंगेतर क्यों हूँ ? कैसे हूँ ? ... मैं ये दोनों संबंध कैसे निभा सकती हूँ ? ... सब से ऊँची प्रेम सगाई....

मैं तुम को कभी नहीं बता सकी कि उन दिनों मैं कितनी दुर्बल थी। न मैं तुमसे नाता तोड़ सकती थी; और न मैं पिता जी से कह सकती थी कि कन्नौज में बैठे उस अपरिचित व्यक्ति से मेरा कोई संबंध नहीं है। ... बड़ी रात गए तक मैं असमंजस में अपने द्वंद्वों से उलझती-सुलझती रही, पर किसी से भी नाता तोड़ने का निश्चय मैं नहीं कर पाई। अंततः मैंने तुमसे ही मार्ग पाया। तुम यदि मेरे इतने आत्मीय होकर भी सागर के समान कभी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते, तो मैं ही इतनी आतुर क्यों हूँ ? मैं क्यों तुम से ही संयम न सीखूं। तुम्हारी ही तरह मर्यादित रहूँ । तुम्हारे निकट भी रहूँ और अपने तन-मन को संभाले भी रहूँ । मैं भी तुम्हारी संगति से ही तृप्त रहूँ । उससे अधिक कुछ न चाहूँ , कुछ न मांगूं। जो मिला है, उसी से संतुष्ट रहूँ । व्यर्थ ही याचक क्यों बनूं ?...

मेरी संतुष्टि का यह स्वप्न, तब तक बहुत सुखद ढंग से चलता रहा, जब तक तुम जमशेदपुर में रहे। तुम जमशेदपुर में थे तो मेरे पास थे। मेरे साथ थे। कॉलेज में तो हम मिलते ही थे। कॉलेज के नाटकों में, साहित्य-परिषद के उत्सवों में, लेखक-मंडल की गोष्ठियों में सब जगह हम साथ-साथ थे। उसपर भी यदि मन चाहे या और कोई आवश्यकता हो, तो बहुत सहज रूप में मैं तुम्हारे घर चली जाया करती थी, तुम मेरे घर आ जाया करते थे। जीवन इतना स्थिर और निश्चित था कि कभी ऐसा लगा ही नहीं कि तुम मेरे पास नहीं हो या मेरे नहीं हो। ... पर बी. ए. की परीक्षाओं के पश्चात् जब तुमने बताया कि एम. ए. की पढ़ाई के लिए तुम दिल्ली जा रहे हो, तो मेरे पैरों तले से ज़मीन खिसकनी आरंभ हो गई ...

तुम दिल्ली जाने की तैयारियों में लगे थे... दिल्ली के रामजस कॉलेज में तुम्हारा दाखला भी हो गया था। ... पर तुम्हारे व्यवहार में कोई अंतर नहीं था। तुमने एक बार भी मुझ से नहीं कहा कि हम साल-दो साल के लिए अलग हो रहे हैं केतकी। मेरी प्रतीक्षा करना। ... तुमने यह तो कहा कि यदि एम. ए. की परीक्षा में तुम्हारा परिणाम अच्छा रहा और दिल्ली में तुम्हें नौकरी मिल गई, तो तुम वहीं नौकरी कर लोगे। ... पर तुमने एक बार भी नहीं कहा कि ''केतकी, मैं तुम्हें दिल्ली बुला लूँगा ।''

तब तक जितना मैं तुम्हें जानती थी, उससे स्पष्ट था कि तुम बहुत पहले ही अपना भविष्य निर्धारित कर लिया करते थे ... उसकी योजना बना लेते थे ...। तुम अपनी पढ़ाई के विषय में सोचते थे, अपनी नौकरी के विषय में सोचते थे ; तो यह कैसे संभव है कि तुम अपनी पत्नी के विषय में न सोचते रहे हो।... और यदि तुम मुझ से कोई चर्चा नहीं कर रहे थे, उससे स्पष्ट था कि मुझे जो स्थान तुम्हारे जीवन में प्राप्त है, उससे अधिक का अवकाश तुम्हारी ओर से नहीं था। ...

मेरा संयम, मेरी मान-मर्यादा, मेरा धैर्य - सब कुछ जैसे अचानक ही चुक गया। एक झटके के साथ। ... मैंने तय किया कि चाहे मेरा अहंकार मुझे रोके, चाहे मैं अपनी ही नज़रों में गिर जाऊँ पर इतनी सुविधा से मैं तुम्हें अपने हाथों में से निकल जाने नहीं दूँगी। मैंने मान रखा था कि मैं तुम्हें पा चुकी हूँ ; किंतु वह मेरी भूल थी। अब मैं तुम्हें पाने का प्रयत्न करूँगी। आँचल पसार कर यदि तुम से तुम को माँग न भी सकूं, तो भी ऐसे अवसर तो पैदा करूंगी ही कि तुम मेरे लिए कुछ अधिक महसूस कर सको।...

मैंने तुम्हें एक फिल्म देखने के लिए निमंत्रित किया... उस समय उससे अधिक रोमानी वातावरण की कल्पना मैं कर नहीं पाई। अँधेरा होगा, साथ-साथ सीटें होंगी, तुम मेरे हाथ पर हाथ रख सकोगे, कलाई पकड़ सकोगे, मैं तुम्हारे कंधे पर सिर रख सकूंगी ...

आज तक हम कभी एक साथ फिल्म देखने नहीं गए थे। ...

''क्या बात है आज फिल्म की कैसे सूझी ?''

''तुम दिल्ली जा रहे हो न।''

''ओह, विदाई समारोह।'' तुम हँस पड़े थे। तुम्हारी हँसी में न विदाई की गंभीरता थी, न करुणा, न भावुकता ... तुम अपने मित्रों के साथ भी तो विदाई के कई आयोजनों में सम्मिलित हो रहे थे।...

''आओगे न ?''

''क्यों नहीं आऊँगा। तुम बुलाओ और मैं न आऊँ, ऐसा कैसे हो सकता है।''

तो तुम आओगे; पर मैं अपना संकोच पूरी तरह त्याग नहीं पाई। इसलिए अपनी छोटी बहन स्वीकृति को भी साथ ले गई, ''चल तुझे सिनेमा दिखा लाऊँ।''

टिकटें मंगवा ली थीं। तुम फिल्म देखने के लिए सीधे थियेटर में ही आए। ... अँधेरे हॉल में तीन घंटे तुम मेरे साथ की सीट पर बैठे रहे। पर न तुम्हारा हाथ तनिक भी बहका, न तुम्हारी बातें रसयुक्त हुईं। तुमने बहुत शिष्ट और मर्यादापूर्ण पुरुष के समान फिल्म देखी। जितनी बातें हुईं, सब तुम्हारी दिल्ली यात्रा और आगे की पढ़ाई के विषय में हुईं। तुम राँची विश्वविद्यालय में प्रथम आ कर भी एम.ए. की पढ़ाई के लिए दिल्ली जा रहे थे, अर्थात् अपना

विश्वविद्यालय बदल रहे थे, अर्थात् अपनी छात्रवृत्ति छोड़ रहे थे। दिल्ली में पढ़ने के लिए राँची विश्वविद्यालय तुम्हें छात्रवृत्ति क्यों देता ? नए और बड़े विश्वविद्यालय का थोड़ा भय तुम्हें था, किंतु तुम में आत्मविश्वास की कमी नहीं थी। तुम बड़े उल्लास के साथ मुँह उठाए हुए, अपने जीवन के नव प्रभात को देख रहे थे। ...तुम्हारा कुछ भी पीछे नहीं छूट रहा था। ..तुम्हारा तनिक भी ध्यान मेरी ओर नहीं था। एक बार तुमने कहा था कि ऐसी बातें जल्दी तुम्हारी समझ में नहीं आती थीं।

तुमने स्वयं मुझे बताया था... कॉलेज में वह इंदिरा थी न हम से एक वर्ष आगे। सीनियर थी तो तुम से साल भर बड़ी भी हो सकती थी। सारा कालेज उसे मीना कुमारी कह कर पुकारता था। लगती भी वह कुछ-कुछ वैसी ही थी। मैं जानती हूँ कि वह भी तुम्हें अच्छी लगती थी। यह नहीं कह रही कि तुम उससे प्रेम करते थे; किंतु तुम उसे पसंद ज़रूर करते थे। ... उसने तुम्हें एक दिन अकेले पकड़ लिया था। कॉलेज के वरांडे के खंभे को संकोचपूर्वक अपने नाखुनों से खुरचती हुई बोली थी, ''आई लव यू।''

तुम जोर से हँस पड़े थे और वह घबरा गई थी, ''यहाँ लिखा है। उसी को पढ़ रही थी।'' और वह भाग गई। फिर कभी कुछ कहने का साहस नहीं कर पाई बेचारी।

मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वरांडे के स्तंभ पर कुछ नहीं लिखा था। वह अपने मन की बात कह रही थी; किंतु तुम्हारे मन में वह सब नहीं था, इसलिए तुमने हँस कर उस बेचारी को ऐसा उड़ाया कि फिर वह तुम्हारे पास ही नहीं फटकी ...

आज तुम मेरी बात भी नहीं समझ रहे थे। ट्रेन में तुम्हारी गोद में सिर डाल दिया था ... ऐसा समर्पण ... तुम उसे भी नहीं समझे ...

मैं कुछ निराश ही हुई। तुम चाहते तो अंधेरे थियेटर में बड़ी सुविधा से मेरे कंधों या मेरी कमर को अपनी बांह से घेर सकते थे।... मेरी हथेली को अपनी हथेलियों में ले सकते थे। तुमने अपना हाथ मेरे ऊरुओं की ओर बढ़ाया होता, तो मैंने उस दिन उसका भी विरोध न किया होता। ... यदि तुमने ऐसा कुछ भी किया होता तो मैंने उसे तुम्हारे प्रेम का प्रस्ताव मान कर उसका स्वागत किया होता।

पर तुमने वैसा कुछ भी नहीं किया। ... थियेटर से बाहर निकल कर तुमने मुझे अपनी टिकट के पैसे देने का भी प्रयत्न किया। ... मैं समझ गई कि जैसे विवाह से पहले ही कन्या मानसिक रूप से अपने ससुराल का अंग हो जाती है और मायका उसके लिए पराया होता जाता है, वैसे ही तुम दिल्ली के हो चुके हो। जमशेदपुर तुम्हारे लिए पराया हो चुका है और साथ ही मैं भी ...

पर मैंने जाते-जाते भी एक प्रयत्न और करना चाहा। अब तक कभी भी तुम्हें बांध रखने की इतनी उत्कट इच्छा नहीं हुई थी। पर उस समय जब तुम मेरे जीवन में से निरंतर फिसलते जा रहे थे और पीछे एक विराट रिक्ति छोड़ते जा रहे थे, तब तुम्हें बांधने की इच्छा मेरे मन की भीतरी दीवारों को ऐसे थपेड़े मार रही थी, जैसे सागर की उत्ताल तरंगें, किनारे की चट्टानों को मारती हैं...

पर अब कुछ नहीं हो सकता था। तुम दिल्ली चले गए थे। न केवल चले गए, बल्कि वहीं के हो गए। तुमने अपने पत्रों में अपने नए प्रेम प्रसंगों की चर्चा भी की... बातें मेरे सामने साफ होने लगीं। तुम्हारे मन में मेरे प्रति प्रेम भाव नहीं था। तुम दिल्ली जा कर मेरे विरह में तड़प नहीं रहे थे। तुम मेरे साथ प्रेम का अभिनय भी नहीं कर रहे थे, न रोमांस कर रहे थे, न फलर्ट कर रहे थे। तुम मुझे धोखा नहीं दे रहे थे, नहीं तो अपने पत्रों में अपने प्रेम प्रसंगों की चर्चा क्यों करते। तुम मुझे अपने नए प्रेम की इस प्रकार सूचनाएँ दे रहे थे, जैसे उसे जानकर मेरे मन में ईर्ष्या का उदय नहीं होगा, जैसे मैं स्वयं को वंचित नहीं ठहराऊंगी। ... जैसे मैं तुम्हारा कोई आत्मीय पुरुष मित्र रही होऊं। तुम्हारे मन में मेरे प्रति शायद सखी-भाव ही रहा होगा, नारी-बोध शायद नहीं था।

पर आज तक इस प्रश्न ने मेरे मन को कभी नहीं छोड़ा कि क्या तुम मुझ से प्रेम नहीं करते थे ? मेरे प्रति तुम्हारा आकर्षण कैसा था ? इस आकर्षण का नाम क्या था ? क्या तुम्हारे मन में मेरे प्रति कभी वासना भी नहीं जागी ? तुमने कभी मेरा लाभ भी उठाना नहीं चाहा ? मुझ से शरीर सुख भी नहीं चाहा ?...

क्यों तुम्हारी याद दिलाने आ गई यह पत्रिका - मैं सोचती रही और पत्रिका के पृष्ठ पलटती रही; वस्तुतः मैं तुम्हारे और अपने संबंधों की खोज करती रही।... पत्रिका में तुम्हारे कितने सारे चित्र थे। मंचों के, सम्मेलनों के, साहित्यकारों के, मित्रों के और परिवार के। अपनी पत्नी के साथ ... अपने पुत्रों के साथ। पुत्र-वधुओं के साथ और पौत्र-पौत्रियों के साथ। कॉलेज के दिनों के भी कुछ चित्र थे... कौन पहचानेगा आज उन चित्रों से तुमको। इतने वृद्ध हो गए हो। सफेद दाढ़ी, सफेद बाल। कुछ लकीरें भी हैं माथे पर ; किंतु तेजस्विता वैसी ही बनी हुई है।...

मैं पहचानती हूँ तुम्हारे उन चित्रों को। वस्तुतः मेरी स्मृतियों में तो तुम वैसे के वैसे ही नवयुवक हो। इस वृद्ध को मैं नहीं पहचानती। मेरा संबंध इस वृद्ध साहित्यकार से नहीं, उस नवयुवक से ही है, जो थोड़ा बहुत लिखता भी था। ... किंतु इस वृद्ध चेहरे को ध्यान से देखती हूँ तो जाने किस जादू से उसमें से तुम्हारा वह युवा चेहरा उभरने लगता है। चेहरा तो वही है। बाल सफेद हो जाने और त्वचा कुछ ढीली हो जाने से चेहरा तो नहीं बदल जाएगा ... वही चेहरा है, जिसके प्रति अब भी मेरे मन में कहीं निकटता है, आत्मीयता है, जिसे पाने की उत्कट अभिलाषा है ...

और मैं सोच रही थी, मुझसे कहाँ भूल हुई ? कैसे मैं असफल हुई ? मैंने अपने जीवन की अनेक घटनाओं से सीखा है कि किसी से संबंध बनाना या बिगाड़ना हमारे अपने वश में नहीं होता। जिससे मिलाना होता है, प्रकृति उसे ला कर पल भर में हमारे मार्ग में खड़ा कर देती है। और संबंध बिगाड़ने हों तो क्षण नहीं लगता, कुछ ऐसा हो जाता है कि हम एक दूसरे की शक्ल भी नहीं देखना चाहते।...

प्रकृति को यदि यही स्वीकार था, तो मुझे इतने समय तक तुम्हारे इतने निकट क्यों रखा ? उस रात पटना से जमशेदपुर आते हुए, ट्रेन में मैं तुम्हारे इतने निकट आ गई, तो एक भ्रम पैदा करने के लिए बीच में वह ज्वर कहाँ से आ गया ? ... के. रोड के मोड़ पर हम दोनों में एक बार विवाह की चर्चा आई तो ''राधा पहले से अनुबंधित निकली''।... तुम मेरे हाथों से फिसलने लगे तो मैंने तुम्हें बाँधने का प्रयत्न किया। तुमने मुझे अपनी भुजाओं में नहीं बाँधा, तो मैंने तुम्हें क्यों समेट नहीं लिया ? उसके पहले के दो वर्ष मैं इतनी निष्क्रिय क्यों रही ? शब्दों में कह सकती तो कितना अच्छा होता, नहीं तो तुम्हारी गोद में लोट जाती ... प्रकृति ने यह कैसा खेल खेला, तुम्हारे निकट भी रखा

और तुम्हारे मन में समाने का कोई अवसर नहीं आने दिया। वक्ष से ही टकरा-टकरा कर लौट आई। ... ऐसी ही दुर्घटना होनी थी तो तुमसे मिलाया ही क्यों ? और आज तुम्हारी याद दिलाने को यह पत्रिका भेज दी ...

अनेक चित्रों में तुम्हारी पत्नी तुम्हारे साथ मंच पर बैठी थी। कैसी गौरवशालिनी लग रही थी, तुम्हारे साथ बैठी हुई ... इसी से मिलाने के लिए प्रकृति ने तुम्हारी एम. ए. की पढ़ाई के लिए दिल्ली भेजने का बहाना बनाया ? ... वहीं मिली वह तुम्हें। ...उसका भी तुम्हारे साथ ही सम्मान हो रहा था। वह तुम्हारे पुण्य में भी आधे की अधिकारिणी थी और तुम्हारे सम्मान में भी। अर्द्धांगिनी जो थी।

मेरा मन कहता है, उसकी जगह पर मुझे होना चाहिए था, वहाँ ... उस चित्र में मुझे होना चाहिए था। मैं ही हुआ करती थी वहाँ । जमशेदपुर, राँची , पटना के कितने ही चित्र हैं मेरे पास। वहाँ मैं ही तुम्हारे साथ हूँ । मैं ही हुआ करती थी। यह मेरा अधिकार था, जाने क्यों खो दिया मैंने ? ...

पर तुम्हारे पुत्रों के चेहरे देखती हूँ तो मेरा मन मौन रह जाता है। मेरे पुत्र ऐसे नहीं हो सकते थे। वे पूरी तरह से अपनी माँ पर हैं। मैं उनकी माँ नहीं हो सकती थी। प्रकृति ने तुम को मुझ से केवल इसलिए छीन लिया, क्योंकि उन बेचों को इस संसार में जन्म लेना था ... उनका जन्म, हम दोनों के मिलने से भी पहले तय हो गया था क्या ?... प्रकृति की इच्छा को कौन टाल सकता है। उन बच्चों को जन्म लेना ही था, इसलिए हमारा संबंध नहीं हो सकता था। ...

आज बैठी सोचती हूँ कि हम तो व्यक्ति के संबंध को ही जानते हैं। कॉलेज, नाटक, लेखक-मंडल, साहित्य-परिषद, दलमा की पिकनिक... कितनी सीमित दृष्टि है हमारी। प्रकृति की व्यापकता को हम कहाँ जानते हैं। वह शताब्दियों में सोचती है। योजनाएं बनाती है। ... हम अपनी इच्छा को ही जानते हैं, प्रकृति की इच्छा को नहीं। इच्छा तो उसकी ही पूरी होनी है; क्योंकि स्वामिनी वह है। मैं तो तुम को प्रमिला से बचाने का ही प्रयत्न करती रही, यह तो कभी सोचा ही नहीं कि वास्तविक स्वामिनी कौन है। ...

किंतु वह हमसे इस प्रकार खेलती क्यों है ? हमारे मन में इच्छाओं को जगा कर उन्हें कुचल देने से उसकी कौन सी महानता सिद्ध होती है ? हम उसके प्रतिद्वंद्वी तो नहीं हैं, अधिक से अधिक उसके अनुचर और खिलौने हैं; किंतु यह बात समझाने के लिए वह कितना लंबा खेल खेलती है। पूरा एक जीवन बीत जाता है। कितनी ढील देती है वह डोर को। पतंग आकाश में कहाँ-कहाँ डोलती रहती है और स्वयं को पूर्णत: स्वतंत्र और स्वेच्छाचारी मानती है। फिर जब वह डोर को समेट लेती है, हम उसकी मुट्ठी में आ जाते हैं। किंतु न तो हमारी उलझने सुलझती हैं, न हमारी इच्छाएं और वासनाओं का स्रोत ही सूखता है। ... विवेक जाग जाए, तो ही बहुत है।... पर विवेक जागता है क्या ? आज भी मेरा विवेक जाग सका है क्या ?...

*

(समाप्त)

शिवना प्रकाशन

The Leading Publication House

Publisher's Identifier Number :978938

Under Category No. 5 (ISBN)

भारतीय तथा प्रवासी हिंदी साहित्य का अग्रणी प्रकाशन संस्थान । उच्च गुणवत्ता की पुस्तकें प्रकाशित करने में सबसे आगे । साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं तथा इंटरनेट पर पुस्तकों के प्रचार प्रसार में सबसे आगे। भव्य समारोहों में पुस्तकों का विमोचन देश के शीर्ष साहित्यकारों के हाथों । पुस्तकों के आवरण तथा इनले डिज़ाइन शीर्ष चित्रकारों की तूलिका से । टंकण तथा वर्तनी की शून्य अशुद्धियाँ । सुप्रसिद्ध समीक्षाकारों तथा आलोचकों से पुस्तकों की समीक्षा । विभिन्न साहित्यिक सम्मानों के लिये पुस्तकों की अनुशंसा करना ।

Shivna Prakashan, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001 India, Email: shivna.prakashan@gmail.com

Phone: +91-7562-405545, +91-7562-695918, Mobile: +91-9977855399

आलेख

बाज़ीगर संसार कबीरा, जानि ढारौ पासा

डॉ. शगुफ़्ता नियाज़

असि. प्रो.विमेंस कालेज
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ ।
satish5249@gmail.com

ये क्षणिक संसार माया-मोह के पासों की भांति है, कबीर ने इस नश्वर संसार के माया मोह को बाज़ीगर के अद्भुत कौतुक के समान आकर्षण किन्तु क्षणिक निरुपित किया है। इससे बचने के लिए मनुष्य को विवेकी होना चाहिए जो परमसत्ता को रहस्यमय सृष्टि को समझ सके।

कबीर एक ऐसे संत थे सामाजिक व्यवस्था को पाल रहे थे वरन् इस सपने को पूरा होता हुआ भी देखना चाहते थे। समाज के निम्न वर्गों में उनकी पैठ थी इसीलिए कबीर का जीवन साधना लौकिक जीवन व आध्यात्मिक जीवन का समन्वय करती हुए चलती है, अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि को कबीर कर्मक्षेत्र के बीच में ही देखते हैं संतों की साधना लोक से पलायन की नहीं है वरन् दिनचर्या में घटित यथार्थ की तलाश कबीर का लक्ष्य रहा, जिससे सामाजिक जीवन की रेखाएँ मनुष्य के आगे स्पष्ट हो सकें। कबीर की साधना सारे आसपास के जीवन को समेटकर चलती है कबीर का काव्य लोक उपादानों को स्वीकारता है और ये उपादान रूपक के रूप में हमारे सामने आते हैं, जो सहज सामान्य जीवन से लिए गए है। इन रूपकों के माध्यम से उन्होंने सशक्त भावों की अभिव्यक्ति की है और इसकी पुष्टि के लिए वे दूर न जाकर आसपास के परिवेश व उपादानों से अपनी बात को बेधड़क सामने रखते है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक अर्थव्यवस्था का सहगामी वहाँ का शिल्पी जीवन कबीर के काव्य को वाणी देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कबीर की काव्य प्रतिभा से स्पष्ट है की प्रखर प्रतिभा चेतना से संपन्न सचेत व्यक्तित्व के धनी थे। कबीर ने ग्रामीण शिल्पी व्यवसाय की बारीक प्रक्रियाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए अपनी चिन्तन व अनुभूति का आधार बनाया।

कबीर का प्रेम आत्मा का परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण है, सृष्टि के कण-कण मं उन्होंने अपने प्रियतम का साक्षात्कार किया है। उनके काल में बाज़ीगर का खेल लोक में बहुत प्रचलित था जो लोकजीवन में तरह-तरह के खेलों द्वारा जनसमाज का मनोरंजन करता था। वह वन्य प्राणियों को (भालू, बन्दर आदि) पशुओं को पालतू बनाकर उन्हें अनेक तरह के खेल सिखाता था व उसके बदले में जो रुपया-पैसा मिलता था उससे अपनी जीविका चलाता था। कबीर के काव्य में बाज़ीगर परमसत्ता का प्रतीक है और उसका खेल सांसारिक प्रपंचों का जिसने सबको ठग लिया परमसत्ता रुपी बाज़ीगर एक प्रकार से निर्माणकर्ता है, प्रभु की तरह जो लीला की सृष्टि करता है और सारी सृष्टि उसके लिए तमाशा है।

परमसत्ता रूपी सत्य की प्रतीति कराने के लिए कबीर ने बाज़ीगर शिल्प से उपादान ग्रहण कर अनेक अध्यात्मिक अभिव्यंजनाएँ की हैं। बाज़ीगर दर्शक को भुलावे में डालकर अवास्तविक में भी सत्य की प्रतीति करा देता था। गाँव में आज भी जब इस तरह का खेल तमाशा दिखाने के लिए एक प्रकार का वाद्ययंत्र बजाया जाता है जिसे सुनकर लोग तमाशा देखने के लिए इकठ्ठे हो जाते है। इस भाव की व्यंजना कबीर ने ब्रह्म की सृष्टिलीला के सन्दर्भ में निम्न साखी में की है।

डमरू से सम्बंधित रूपक ...

बाज़ीगर डंक बजाई, सम खलक तमासे आई।
बाज़ीगर स्वांग सकेला, अपने रंग रैब अकेला।[1]

परंतु यदि कोई विवेकी या सच्चा भक्त हो तो कठिन परिश्रम व साधना से उसे परमसत्ता के रहस्य को जान भी लेता है जैसा कि कबीर इन साखियों में अद्भुत करते हैं- बाजी को बाज़ीगर जाँनै, कै बाज़ीगर का चेरा।'चेरा कबहूँ उझिक न देखै, चेरा अधिक चितेरा ।[2]

इसमें संसार के लिए बाजी परमसत्ता के लिए बाज़ीगर उपमान ग्रहण किया है। कबीर का मत है कि संसाररूपी जो बाजी उस परमसत्ता रूपी बाज़ीगर ने बिछाई है उसे वही जानता है और कोई रहस्य को नहीं जान पाया है। उनका एक और रूपक द्रष्टव्य है जिसमें उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि उन्होंने परमसत्ता की बाज़ीगरी को जान लिया है। यथा-
अब हम जानिया हो, हरि बाजी का खेल।/ डंक बजाय देखाय तमासा, बहुरि सो लेत सकेल।/
हरिबाजी सुर नर मुनि जहंडे, माया चाटक लाया।/
घर में डारी सकल भरमाया, हृदया ज्ञान न आया।/
बाजी झूँठ बाज़ीगर साँचा, साधुन की मति ऐसी।/
कहै कबीर जिन जैसी समुझी, ताकी गति भई तैसी।[3]

इस पर में कबीर ने प्रभु की माया के लिए हरिबाजी, देह के लिए हाट का रूपक माया का विवेचन किया है कि संसार प्रभु की माया का खेल है, जिस प्रकार बाज़ीगर डंक बजाकर तमाशा दिखाकर सारी सामग्री समेट लेता हैं वैसे ही प्रभु पूरे संसार को अपने में समेट लेते हैं।

प्रभु की माया का खेल से देवता, मनुष्य, मुनि सभी ठगे जाते है। माया रूपी बाज़ीगर ने अपना जादू का खेल पसारा है। उसने सभी देहाभिमान उत्पन्न करके सभी को भ्रम में डाल दिया है। कबीर का यह विश्वास है कि जिस प्रकार बाज़ीगर सत्य होता है, उसका खेल भ्रममात्र होता है, वैसे ही ईश्वर सत्य है, उसका यह खेल (संसार) मिथ्या है। वह कहते हैं कि जिन्होंने संसार को जैसे समझा है उनको वैसे ही गति प्राप्त होती है। जो आत्मा को संसार से अलग समझ लेते हैं वे मुक्त हो जाते हैं,

जो देहाभिमान से अलग नहीं हो पाते, वे जन्म मरण के चक्र में पड़े रहते हैं और कबीर इस सत्य से अवगत हो चुके है कि ये संसार प्रभु का फैलाया हुआ माया का जाल है, क्षणिक है। परमसत्ता रूपी बाज़ीगर के हाथों में हम बाज़ीगर के बन्दर ने समान हैं और वह हमें जैसे चाहता है वैसे नचाता है। इस भाव की अभिव्यक्ति इन्होंने इन पंक्तियों में बहुत सशक्त रूप में की है, जो नीचे उद्धृत है–

बन्दर से सम्बंधित रूपक..

बाज़ीगर बन्दर करि राखै, ले जाय संग लगाई।[4]

बाज़ीगर बन्दर के गले में डालकर अपनी इच्छानुसार जहाँ, चाहता है ले जाता है उसी प्रकार माया या बाज़ीगर रूपी परमसत्ता मानव को लुभावने बंधन से बांध रखती है पुरुष या जीव रूपी बन्दर उसकी रूचि के अनुसार ही गति करता है।

इसी प्रकार अभिव्यक्ति में कबीर ने कहा है कि सकल बटोर करै बाज़ीगर, अपनी सुरित नचाया।[5]

बाज़ीगर रूपी परमसत्ता अपनी इच्छानुसार बन्दर से नृत्य कराकर दर्शकों का मनोरंजन करता है। वे कहते हैं कि जीव की साँस रूपी डोर परमसत्ता के हाथ में है और वह इसी के सहारे इच्छानुसार नचाता है और इसके माध्यम से कबीर ने यह शिक्षा देनी चाही है की यदि जीव विवेकी नहीं है तो उसे इस संसार रूपी मायाजाल में फंसकर आशाओं की डोर द्वारा नाचने वाले बन्दर की भांति स्वाभिमानी शून्य जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ेगा।

नटकला से सम्बंधित रूपक..

बाज़ीगर की तरह लोकजीवन का मनोरंजन करने वालों में नट–नटी का नाम प्रमुख है। ये विभिन्न प्रकार के वाद्य संगीतों के ज्ञाता होते थे और बांस रस्सी के सहारे अपनी कला का प्रदर्शन कर जीविकोपार्जन करते थे। कबीर के काव्य में नट सिद्ध योगियों के रूप में आए हैं, जो अपने तमाशे से अज्ञानियों को भ्रम में डाल देते है और सांसारिक माया के खेल को उन्होंने नट की कला कहा है और शिल्प के माध्यम से कबीर ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है।

ब्रह्म रूपी नट विविध व्यापारों द्वारा अपनी सत्ता सिद्ध करके नट के वेश से नृत्य करता है, यथा नट अपनी कला से बांस में बंधी तन्तु पर नृत्य करता हुआ दिखायी देता है, किन्तु वस्तुतः वह सत्य नहीं है, कला मात्र है और उसे केवल विवेकनी बुद्धि

वाला पुरुष ही समझ सकता है।

बहरूपिया से सम्बंधित रूपक..

कबीरदास कृत रमैनी काव्य में बहरूपिया से सम्बंधित रूपकों का वर्णन भी मिलता है। जैसे– नाना रूप बरन यक कौन्हा, चारि बरन उन्ह काहु न चीन्हा।/ नष्ट गए करता नहिं चीन्हा, नष्ट गए औरहिं मन दीन्हा।/नष्ट गए जिन्ह वेद पढ़ै पै भेद न जाना।/ विमलख करै नैन नहिं सूझा, भया अयान तब कछुवौ न बूझा।/ नाना नाच नचाय के, नाचै नट के भेख।/ घट घट अविनासी बसै, सुनहु तकी तुम सेख।[6]

जिस प्रकार नटवर विभिन्न प्रकार की क्रियाओं द्वारा विभिन्न मुख मुद्राओं द्वारा लोगों का दिल बहलाता है। ठीक उसी प्रकार एक प्रभु ने अनेक प्रकार के रूप और वर्ण (रंग)की सृष्टि की परन्तु उस पर ब्रह्म को उसको चारों वर्णों (जातियों) में से कोई न पहचान सका। जिस ब्रह्म ने उसे बनाया उस स्रष्टा को वह जीव नहीं पहचान सका। वह नट (अभिनेता) के रूप में नाना प्रकार के शरीर धारण करते हुए, नाना प्रकार के शरीर को धारण करते हुए, नाना प्रकार की भूमिकाओं का अभिनय करते हुए विद्यमान रहता है, परन्तु वह इन भूमिकाओं में से किसी में आसक्त नहीं होता है। वह प्रत्येक घट (शरीर) के भीतर सदा अविनाशी और अनासक्त रूप में विद्यमान रहता है उसी से चित्त का संयोग होने पर मार्मिक ज्ञान होता है।

इसी प्रकार के भाव एक अन्य साखी में प्रस्तुत है, जिसमें संसार की समस्त लीला नट की नट–सारी है और सृजक ब्रह्म रूपी नट ने इस सृष्टि की रचना की है। संसार के विविध वेश और रूप में वह एक ही सत्ता है लेकिन इसे कोई विरला विवेक ही जान पाता है– नटवर विधा खेल जो जानै, तेहिका गुन सो ठाकुर मानै।/ उहै जु खेलै सब घट मांही, दूसर के लेखा कछु नाही।[7]

इस रमैनी में नटवर का रूपक लेकर उसे परमसत्ता माना है। नटवर नट–कला में पारंगत होता है और विभिन्न प्रकार की नट– कला दिखाता है अर्थात विभिन्न भूमिकाओं का अभिनय करता रहता है। परम चेतना भी उस नटवर के समान है जो संसार में विभिन्न जीवों की भूमिकाओं का अभिनय करता रहता है। जो उसके खेल के रहस्य को जनता है, उसके गुण का वेत्ता स्वामी है अर्थात सदगुरू उसी को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं।

वही परमचेतना सभी जीवों में नाना प्रकार से अभिनय करता रहता है, किसी दूसरे की उसमें गणना नहीं है। अच्छा या बुरा जो अवसर मिल

Dr. Rajeshvar K. Sharda MD FRCSC
Eye Physician and Surgeon
Assistant Clinical Professor (adjunct)
Department of Surgery, McMaster University

1 Young St., Suite 302, Hamilton ON L8N 1T8
P: 905-527-5559 F: 905-527-3883
info@shardaeyeinstitute.com
www.shardaeyeinstitute.com

जाये और किसी प्रकार से भी जो भक्त सदगुरू को प्राप्त कर सके, वही पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। लेकिन इस पूर्णता को प्राप्त करना अत्यंत कठिन विद्या है, क्योंकि जो अंत:करण से प्रभुभक्ति नहीं करेगा उसे प्रभु के चरणों की प्राप्ति नहीं होगी।

रस्सी से सम्बंधित रूपक..

कबीर के काव्य में रस्सी से सम्बंधित रूपकों का वर्णन साखी में मिलता है। जैसे- कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।/ सूली ऊपरी नट विधा, निरुंत नाहीं ठाम।[8]

प्रस्तुत साखी की व्याख्या करते हुए डॉ.जयदेव सिंह वासुदेव सिंह ने प्रभु के नाम स्मरण में अर्थात वास्तविक भक्ति में अत्यंत कठिनाई है और इस कठिनाई की नट की शूली के समान माना है 'शूली पर खेल' में अहं के विनाश की ओर संकेत हैं। इसी खेल को जो पूर्णरूप से निर्वाह नहीं पर पाता, वह भक्ति के चरम लक्ष्य से पतित हो जाता है।[9]

प्रो. पुष्पपाल सिंह ने भी हरिनाम स्मरण में कठिनाइयों की अतिशयता को माना है जो नट की उसी कुशलता के समान है, जो मृत्यु की सूली पर चढ़कर अपने आंगिक कौशल दिखाता है, यदि वह वहाँ से गिर भी जाय तो उसके बचने का उपाय नहीं। इसी प्रकार भक्ति-साधना से पथभ्रष्ट भक्त का भी रक्षक कोई नहीं क्योंकि उसके लोक व परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।[10]

डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र ने भी भगवान के नाम स्मरण में आने वाली कठिनाइयों को खांडे की धार पर चलने के समान बताया है। यही भी नट के सूली पर चढ़कर किये जाने वाले खेलों के समान है। इस सूली पर से गिरने पर जैसे नट के बचने की कोई आशा नहीं है, वैसे ही इस भक्ति-सधना से पथ-भ्रष्ट होने पर जीव के उत्थान का कोई मार्ग नहीं है।[11]

इस साखी में नटवर शिल्प की नट-विद्या से रूपक ग्रहण कर भक्ति मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन किया है। नट अपनी नटकला में दो सिरों पर डंडा गाड़ता है और उसमें रस्सी बाँध कर उस रस्सी पर चलता है। जिसमें यह भायवह स्थिति निरंतर बनी रहती है कि वहाँ से गिरने पर उसका कोई सहारा नहीं अर्थात यह नट विद्या के मार्ग में बहुत कठिनाई है, ठीक इसी प्रकार कबीर ने इस साखी में भक्ति की साधना की सबसे बड़ी कठिनाई की ओर संकेत किया है कि यों तो तन्त्र, हठयोग आदि की साधनाओं के समान भक्ति में आसन-प्राणायाम मुद्रा बन्ध आदि की यन्त्रणा नहीं है। ज्ञानयोग के समान प्रखर बुद्धि की भी भक्ति में आवश्यकता नहीं है। वरन् इन सबके अतिरिक्त भक्ति की सबसे बड़ी शर्त अहं का पूर्णरुपेण त्याग और ख़ुदी का ख़ात्मा।

केवल नाम जप वास्तविक भक्ति नहीं है। भक्ति नट के सूली पर खेलने के समान है। 'सूली पर खेल' में अहं के विनाश की ओर ही संकेत है। इस खेल में जो पूर्णरूप से निर्वाह नहीं कर पाता वह जीवन के चरम लक्ष्य से पतित हो जाता है।

जीवन के चरम लक्ष्य से व्यक्ति पतित न हो वह सही मार्ग पर चले, सांसारिक मायामोह के बंधन में न पड़े और वास्तविकता सत्ता को पहचान सके। इसके लिए कबीर ने नट-कला व बाज़ीगर शिल्प से सजीव रूपक ग्रहण कर अपनी

आध्यात्मिक अनुभूतियों को जीवंत अभिव्यक्ति प्रदान की है।जो आज भी हमें दिशा दिखाती है व सचेत करती हुई प्रतीत होती है।

काव्य परतात्त्विक शिव रूप है जिसकी पवित्र भावधारा में विश्व का प्रत्येक मानव निमग्न होकर ही जीवन की पूर्णता को प्राप्त करता है जो उस विश्व काव्य धारा में थोड़ा निमग्न होकर ही जीवन की पूर्णता को प्राप्त करता है जो उस विश्व काव्य रस धारा में थोड़ी देर के लिए भी निमग्न न हुआ उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा ही समझाना चाहिए।[12]

आचार्य शुक्ल के इस कथन की सत्यता असंदिग्ध है क्योंकि काव्य परम पिता परमेश्वर की दिव्य कृति है और सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम् के प्रत्यक्षीकरण के काव्य कला ही मानव को सच्चिदानन्द तक पहुँचाती है।

भक्ति काल के कवियों ने भी काव्य के माध्यम से पर परब्रह्म को पहचानने की चेष्टा की है। भक्ति काल वास्तव में भारतीय चिंतन और अध्यात्म के पुनर्जागरण का काल था। निर्गुण काव्यधारा में स्वानुभूति और व्यक्तिगत साधना पर बल दिया गया है। भक्तिकाल में रचे साहित्य उद्देश्य लोक व्याधि से मुक्ति है। निगुर्ण काव्य पुरुष की आत्मा भक्ति प्राण-शाश्वत रस और शरीर लोकवाणी है। यह हृदय, मन और आत्माओं की विविध ज्वालाओं का हरण कर आध्यात्मिक तृप्ति प्रदान करता है। निर्गुण कवियों के हृदय में लौकिक-परलौकिक दोनों जगत की आधारभूत भावनाओं का स्पन्दन छिपा है, जो मानव को नश्वर जगत के प्रति वैराग्य तथा अनिश्वर परमसत्ता के प्रति अनुराग की प्रेरणा प्रदान करता है।

परमसत्ता का यह अनुभव गूंगे की मिठाई के समान इन्द्रियातीत विषय है। फलत: इसकी अभिव्यक्ति अस्फुट रहस्यात्मक एवं गूढ़ है।[13]

यह कवि कर्म की विवशता थी कि आंतरिक सत्य और इन्द्रियातीत अनुभव को काव्य भाषा में ही सम्प्रेषणीय बनाया जा सकता था। भक्तिकाल के कवियों की विषय-सामग्री निजी क्षेत्र की वस्तु थी। इसलिए उन्होंने अपने काव्य प्रतिमान भी उसी के अनुरूप सशक्त व्यंजना के लिए चुने। काव्य में उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द-संकेत मात्र नहीं, अपितु प्रतीक बन गए और उनके अर्थ विस्तार की सीमा असामान्य ढंग से बढ़कर अप्रस्तुत और अचेतना लोक के अभिप्रायों की गहराइयों तक पहुँच गई।

*

सन्दर्भ

1 कबीर ग्रंथावली, डॉ भगवत स्वरूप मिश्र, पद 116, पृ. 2722 कबीर ग्रंथावली, डॉ भवत स्वरुप मिश्र, पद 238, पृ. 126, 3 कबीर वाड्मय, जयदेव सिंह वासुदेव सिंह, खंड-2 (सबद), पद 18, पृ. 23- 24, 4 कबीर ग्रंथावली, डॉ. भगवत स्वरुप मिश्र,पद 240, पृ. 126, 5 कबीर शब्दावली, भाग-3, मिश्रित-3, 6 कबीर वाड्मय, जयदेव सिंह वासुदेव सिंह, भाग 1, (रमैनी 6 3) पृ.19, 7 कबीर वाड्मय, जयदेव सिंह वासुदेव सिंह, भाग-1 (रमैनी). पृ. 106,

8 कबीर ग्रंथावली, डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र, सुमिरन कौ अंग (साखी 29) पृ. 6, 9 कबीर वाड्मय, जयदेव सिंह वासुदेव सिंह, भाग-3 सुमिरन कौ अंग पृ. 29, 10 कबीर ग्रंथावली,(सटीक), प्रो पुष्पपाल सिंह, सुमिरन कौ अंग, पृ.92,

11 कबीर ग्रंथावली, डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र,सुमिरन कौ अंग (साखी), पृ. 18, 12 चिन्तामाणि भाग-1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इण्डिया प्रेस लि. प्रयाग 1956 पृ 199,13 सिद्ध साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, शोध प्रबंध इलाहाबाद विश्व विद्यालय 1953 पृ. 456।

रेखाचित्र

मिलाप से पहले

अखिलेश शुक्ल

विगत तीन माह से अप डाउन कर रहा हूँ । शायद ही कभी यह ट्रेन लेट हुई हो। कभी हुई भी तो आधा घण्टे या पन्द्रह बीस मिनट के लिए। लेकिन आज मुझे ड्यूटी पर समय से पूर्व पहुँचना था। सोचा था निरीक्षण दल के आने से पहले ही पहुँचकर सभी व्यवस्था चुस्त दुरूस्त कर लूंगा। इस ट्रेन के कोच में बैठे हुए अन्य अपडाउनर्स के लिए तो देर अबेर होना रोजमर्रा की बात है। लेकिन मैं ऐसा मानता रहा हूँ कि एक साहित्यकार को नौकरी के साथ-साथ और भी बहुत सी बातों का ख्याल रखना पड़ता है।

प्रत्येक अप-डाउनर को रोज़ ही नए अनुभव होते हैं। इन अनुभवों की परिभाषा अपनी तरह से की जाती हैं। कभी- कभी कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जो सृजन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करते हैं।

रोज की तरह ट्रेन प्लेटफार्म पार कर अपनी गति में आ गई है। यात्री कुछ व्यथित लग रहे हैं। इसका कारण अपडाउर्स द्वारा उन यात्रियों को हटाकर अपने बैठने के लिए जगह बनाना है। अब कुछ साथी गप्पे मारने में मशगूल हो गए हैं। चार पाँच मौसम की बेरूखी पर चर्चा कर रहे हैं। शेष ताश की गड्डियों पर अपना भाग्य आजमा रहे हैं, इन्हें दीन दुनिया से कोई मतलब नहीं है। वहीं एक ओर कुछ ऐसे भी हैं जो अपने अपने बॉस की निंदा कर आनंदित हो रहे हैं। मैं उन सब के साथ होते हुए भी अलग दिखाई पड़ता हूँ। अपने सृजन की छोटी सी दुनिया को कंधे पर लटकते थैले में समेटे हुए।

चलती ट्रेन में टी.सी. के लाख मना करने के बावजूद वह छोकरा इस एस-४ में चढ़ आया है। यदि गाड़ी की गति कम होती तो टी.सी. उसे बलपूर्वक अवश्य ही धकाकर बाहर गिरा देता। हाथ पाँव जोड़ने व अपनी रामकहानी सुनाने के बाद बमुश्किल टी.सी. ने उसे कोच में रूकने की इजाज़त दी है। साधारण नैन नक्श वाला वह युवक मुझे ही घूर रहा है। उसने अपने कंधे पर मेरे थैले से अधिक कीमती बैग टाँग रखा है। जूते भी मेरी घिसी पिटी कोल्हापुरी चप्पल से ठीक ठाक हैं। वह टी.सी. के कान में कुछ कह रहा है।, मैंने वार्तालाप सुना तो नहीं पर वह युवक टी.सी. से कुछ गोपनीय चर्चा के बाद सहज हो गया है।

उसने अपना बैग खोलकर दो ब्रश तथा पालिश की डिब्बियाँ निकालकर हाथ में रख लीं है। वह मेरी ओर बढ़ रहा है, लेकिन यह मेरा भ्रम है। मेरे वजूद को अस्वीकारते हुए वह अन्य यात्रियों से पालिश कराने का अनुरोध कर रहा है। उसकी बातें मुझे रूचिकर लग रही हैं। मैंने भी इस तरह अपना धंधा जमाने वाला व्यक्ति पहली बार देखा है। वह बहुत ही विनम्रता से लोगों की तारीफ़ के पुल बांधे जा रहा है। यात्रियों के कपड़े, चश्में, हेयर स्टाईल आदि उसकी प्रशंसा की जद में है। कोच में शायद ही कोई यात्री हो जो उससे प्रभावित न हो रहा हो।

वह अपने निराले अंदाज में राजकपूर की 'श्री ४२०' फिल्म में गाया गया गीत 'मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिशतानी, सर पर लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है हिंदुस्तानी.....।' गा रहा है। मुझे भी उसकी यह स्टाईल पसंद आ रही है। उसके गाने पर यात्री मोहित हो रहे हैं। जो पुराने अपडाउनर्स हैं, उसे जानते हैं, उसकी तरफ से बेख़बर हैं। वह भी उनके पास नहीं जा रहा है। अन्य यात्री उसके गाने का मज़ा ले रहे हैं। साथ ही कुछ अपने जूतों पर पालिश करा रहे हैं।

इसी बीच मैंने उसे इशारे से अपने पास बुलाया, उससे कुछ व्यक्तिगत प्रश्न पूछने के लिए। उसने मेरे इशारे को समझ लिया है। वह मेरी साधारण चप्पलों पर नज़र डालते हुए अनमने मन से पास आया है।

'कहिये बाबूजी क्या बात है?' कहकर वह ठीक सामने खड़ा हो गया है। मैंने उसकी प्रशंसा की तथा धंधे की इस तकनीक पर खुलकर बातें की। उससे यह भी कहा कि तुम पालिश ज़रूर करते हो, पर हो किसी कुलीन घर से। सहयात्री मेरी बातें सुनकर मंद- मंद मुस्करा रहे हैं तथा मन ही मन मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं। एक दो तो मुझे उस युवक से बातें न करने की हिदायत देने लगे हैं। वे यात्री यह समझे हुए है कि यह कोई चोर उचक्का है जो मौका मिलते ही यात्रियों का सामान पार करने वाला है।

उसकी आँखें डबडबा गईं हैं। आस्तीन से दोनों आँखों की कोर साफ करने की वह भरसक कोशिश कर रहा है। मेरे प्रश्न के उत्तर में उसने इतना ही

कहा, 'बाबूजी समय- समय की बात है, क्या किया जाये।'

ताश खेल रहे मेरे साथियों ने अपना ताम झाम समेट लिया है। क्योंकि गाड़ी गंतव्य पर पहुँच रही है। मेरे साथ- साथ अन्य अपडाउनर्स भी उतरने की तैयारी कर रहे हैं। उसने भी ब्रश तथा पालिश की डिब्बियाँ अपने बैग में रख ली है। शायद वह भी हमारे साथ इसी स्टेशन पर उतरने की तैयारी में है। अभी गाड़ी के रूकने में पाँच सात मिनिट का समय शेष है। टी.सी. ने उसे अपने पास बुलाकर कुछ कहा है, पता नहीं क्या कहा होगा, यह वे दोनों ही जाने।

उसने फिर से अपना बैग खोलकर काली पालिश टी.सी. के जूतों पर लगाकर ब्रश रगड़ना प्रारंभ कर दिया। ब्रश के हिलने के साथ वह कुछ कहता भी जा रहा है। मैं गाड़ी से उतरने के लिए उसके पास ही आकर खड़ा हो गया। टी.सी. को उस युवक पर गुर्राते हुए साफ़ सुन रहा हूँ । उसके मुख से बार बार 'आप मेरी माने तो' ही निकल रहा है।

जूतों पर पालिश करने के पश्चात बीस का नोट उसने टी.सी. की हथेली पर रखा। एवज में टी.सी. ने तीन चार पुलिसिया गाली उस छोकरे पर न्यौछावर करने के बाद बीस का नोट जेब के हवाले किया। उस युवक के चेहरे पर मायूसी साफ़- साफ़ दिखाई दे रही है। बीस रूपये का नोट हाथ से निकल जाने का दर्द उसके चेहरे से झलक रहा है। जिसे मैं तो महसूस कर रहा था, अन्य यात्री करें या नहीं?

गाड़ी के रुकने और उतरने के पहले मैंने उससे पूछा, 'कितना कमाया आज?'

'क्या ख़ाक कमाया बाबूजी', कहकर वह भी उतरने की तैयारी कर रहा है। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, बीस टी.सी. ने झटक लिए, गाड़ी में धंधा करने के एवज में कुछ बदमाश झपट लेगें। दिन- दिनभर भटकने के बाद भी शायद उसके पास चालीस पचास बचें?

इस घटना के पश्चात पन्द्रह बीस दिन तक वह फिर गाड़ी में दिखाई नहीं दिया। मेरी निगाहें बरबस उसे ढूँढती रहतीं। मैंने इस दौरान कई सहयात्रियों से उसकी जानकारी प्राप्त की किंतु कोई भी उसके बारे में बताने में असमर्थ था। कुछ दिनो बाद मैं स्वास्थ्य खराब होने के कारण डयूटी पर न जा सका। उसी दरमियान एक दिन वह मेरे दरवाज़े पर खड़ा अंदर आने का इंतजार कर रहा था। मेरे बारे में पूछने के पश्चात बुत बनकर दरवाज़े पर खड़ा वह युवक न जाने कब तक यों ही खड़ा रहता यदि मेरी नज़र उस पर न पड़ी होती। मैं उस दिन उसे तुरंत पहचान गया था। मेरे अंदर बुलाने पर पलंग के एक ओर खड़ा हो गया। उसने हाथों में रखी पोलीथीन में पैक की सामग्री मेरे सिरहाने पर रखी टेबिल पर रख दी। शायद फल वगैरह थे। बातचीत में पहल करते हुए मैंने उससे उसका हालचाल पूछा। जबाब में उसने बताया कि, 'जिस दिन आपका सामना गाड़ी में हुआ था, उस दिन शाम को पिता ने शराब के नशे में माँ की जमकर पिटाई की थी। जिसकी वजह से उनकी स्मृति क्षीण हो गई है। मैं दिन दिन भर उनको लेकर चिंतित रहता हूँ।' कहते हुए उसके चेहरा रूदन की पूर्वावस्था में आ गया था।

मैंने उसे ढांढस बंधाया था, 'चिंता की कोई बात नहीं है, यह एक परिस्थितिजन्य घटना है कुछ दिन बाद स्मृति वापस आ जाएगी। तुम काम पर लगे रहो अन्यथा गुज़ारा कैसे करोगे?'

मेरे प्रश्न के जवाब में उसने गाँव की ज़मीन उससे मिलने वाली आय आदि के बारे मंघ सब कुछ बता दिया था। उसने अपने पिता की आदतों से तंग आकर माँ के साथ अलग रहना शुरू किया ही था किमुसिबतों ने आ घेरा। पहले फांके मस्ती के दिन फिर अचानक माँ पर पिता का प्रहार और स्मृति लोप। मुझे लगा जैसे सब कुछ मेरे साथ घटित हुआ हो। लेकिन गाड़ियों में उसकी कमाई से घर खर्च चलना और अच्छी ज़िन्दगी बसर करना जैसा ख्वाव उसने बुना था जिसकी संभावना कम से कम मुझे तो दिखाई नहीं दे रही थी।

उसके चले जाने के पश्चात कुछ दिन बाद स्वस्थ होकर मैं पुनः अपनी डयूटी पर जाने लगा था।

वर्ष भर के अपडाउन व प्रिंसिपल के दायित्व की थकान में मैं सब कुछ भूल चुका था। उस युवक की यादें मेरी स्मृति से धुँधली हो चली थीं। एक दिन दोपहर मैं अपने शिक्षकों को मासिक मूल्यांकन की जानकारी दे रहा था। उसी बीच उसने आकर मेरे पैर छुए और मेरी आँखों के सामने एक कागज़ का पुर्जा रख दिया। मैं कुछ समझता उसके पहले ही वह बोला, 'सर यह लीजिए आपकी चाहत का फल, जिसकी अपेक्षा आप मुझ से कर रहे थे।''

मैं कुछ समझूँ उसके पहले ही उसने कहा, 'सर क्या आप एक पालिश वाले छोकरे को अपने अधीन पाकर खुश नहीं होंगे?' मैं सबकुछ समझ चुका था। उसके कहने में ग़ज़ब का आत्मविश्वास था, अपनापन था। जिसे सुनकर मुझे भी अच्छा लग रहा था। मैंने कुर्सी से उठकर उसे गले लगा लिया। मुझे इस बात की बेहद खुशी थी कि गाड़ियों में पालिश करने वाला वह प्रतिभासम्पन्न युवक अब मेरे स्टाफ का सदस्य होगा। विद्यालय के अन्य शिक्षक व कर्मचारी भी इस मिलाप से खुश थे।

*

63,Tirputi Nagar,
Itarsi-461111
M.P-India
akhilsu12@gmail.com

नव अंकुर

नीलाक्षी फुकन नेउग

(नीलाक्षी फुकन नेउग नार्थ कैरोलाईना स्टेट यूनिवर्सिटी में टीचिंग एसिस्टेंट प्रोफेसर हैं। बाल कथाएँ और लोक कथाएँ लिखती हैं। असामी भाषा की अनुवादिका हैं और कविता में उनका यह नया प्रयोग है)

गंगा मैया

गंगा मैया मैली हो गयी
कोई मानने को नहीं तैयार,
चलिये मैं कराती हूँ उस भव्य स्वरूप का दर्शन
फिर जानेंगे आपका विचार।
एक को धक्का देकर दूसरा आगे बढ़ रहा है
करने माता का दर्शन साक्षात्
सामने ही देखें भक्तों की यह लम्बी क़तार।
एक किनारे पर घंटों से चल रहा है किसी का
अंतिम संस्कार,
दूसरे किनारे पर पंडित जी लगवा रहे हैं
यात्रियों को डुबकियाँ लगातार।
धोबी-धोबिन जुटे हैं पूरी बस्ती सहित
निकालने कपड़ों से मैल हज़ार बार,
उसके ही निकट छोटे बच्चे नंगे बदन
लगा रहे हैं नदी में छलांग बार-बार।
थोड़े ही आगे जवान लड़कों ने बना लया है
रेत पर ही क्रिकेट का मैदान,
गेंदों के उछलते ही मच जाती है भागदौड़
दर्शनार्थियों को भी लगी है बाल हज़ार बार।
शहर की गंदगी नालों से होकर
नदी में गिर रही है कब से लगातार,
नालों के ऊपर बैठे हैं बीस-तीस लोग
हल्का होने की कोशिश में छिपाये अपना मुँह
और पिछवाड़।
उन्हीं के सामने से गुज़रा है गाय-भैंसों का झुण्ड,
कितने सौभाग्यशाली हैं ये गाय-भैंस-बकरियाँ
बिना बाधा के मैया का दर्शन करने आते हैं
बार-बार।
तभी अचानक से बारिश आती है
पता नहीं लोगों की भीड़ कहाँ गायब हो जाती है,
देखते ही देखते घुटनों तक पानी आ जाता है,
फूल पत्तियाँ कागज़, कपड़े, प्लास्टिक के थैले
डिब्बे, गोबर सब पानी में तैर रहे होते हैं।
अचानक से बारिश रुक जाती है
फिर सूरज निकल आता है
शुरू होती है चहल-पहल चारों ओर
मच जाती है भक्तों की भीड़-भाड़, भाग-दौड़।
सबके मन में एक ही इच्छा मैया के दर्शन का
रास्ते में जो भी मिला है समझो प्रसाद माता का
गंगा तो हमारी मैया हैं
जन्म-जन्मांतर से प्राणों की रक्षा करनेवाली हैं
वो कैसे मैली हो सकती हैं?

*

nilakshi_phukan@yahoo.com

Beacon Signs 1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 **Fax: (905) 678-1271**

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

बहादुर गुदरिया

सविता अग्रवाल 'सवि'

भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम-अंग्रेज़ों के अत्याचारों से तंग आकर भारत में एक आन्दोलन शुरू हुआ जो 1857 के गदर के नाम से प्रचलित हुआ।दिल्ली और मेरठ बड़ा सैनिक अड्डा होने के कारण वहाँ आन्दोलन की गतिविधियाँ बहुत ज़ोर पकड़ रहीं थीं। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। मेरठ में क़रीब 2357 भारतीय सैनिक और 2038 ब्रिटेन के सिपाही थे। पूरे मेरठ में अशांति का वातावरण था। बाज़ार में विद्रोह प्रदर्शन और आगजनी की घटनाएँ हो रही थीं। अनेकों घर बर्बाद हो रहे थे सिपाहियों की पत्नियां अपनी चूड़ियाँ तोड़ रही थीं। अनेक घरों में मातम छाया हुआ था। बालकों और औरतों को मौत के घाट उतारा जा रहा था। कर्फ्यू लगा हुआ था। किसी को भी घर से बाहर निकलने की इजाज़त नहीं थी। कभी-कभी सब्ज़ी और राशन इत्यादि लाने के लिए कर्फ्यू उठाया जाता था। लोग भागकर जल्दी से घर का सामान लाकर रख लेते थे। पता नहीं दूसरी बार कब कर्फ्यू उठे और बहार निकलने का मौका मिले।

गुदरिया (गुद्दो) कर्फ्यू खुलने पर, अपनी माँ के यहाँ, जो कि बगल वाली गली में क़रीब आधा फर्लांग पर ही रहती थीं, चली गयी। गोद में छः माह का बच्चा था, उसे भी साथ ले गई। माँ से बात करते-करते समय का ध्यान ही नहीं दिया और फिर से कर्फ्यू लगने का समय हो गया। तभी गुदरिया को अचानक अपने ससुराल वापिस जाने की याद आई। माँ के बहुत मना करने पर भी वह न मानी और बोली -आधा फर्लांग का ही तो रास्ता है मैं शीघ्र ही घर पहुँच जाऊँगी वर्ना सासू जी नाराज़ होंगी और पति भी परेशान होंगे। गुदरिया की जिद् के सामने माँ की एक न चली।

जैसे ही गुद्दो घर से बाहर निकली, कुछ ही कदम चली थी कि उसे हर हर महादेव के नारे लगाते हुए कुछ लोगों की आवाज़ें सुनाई दीं उसके कदम और तेज़ी से चलने लगे परन्तु वो आवाज़ें और तेज़ी से उसके क़रीब आती गयीं तभी गुद्दों को अहसास हुआ कि वह घर तक न पहुँच पायेगी और वह बीच रास्ते में ही थी न ही माँ के यहाँ और न सास के यहाँ पहुँच सकेगी। पुराने घरों में चारपाई बिछाने का चलन था सभी घरों के बाहर चारपाई पड़ी ही रहती थी क्योंकि लोग उसी पर बैठ कर आपस में वार्तालाप किया करते थे। बस गुदरिया ने जल्दी से उस चारपाई को खड़ा किया और उस पर अपनी चादर जो उस समय की महिलाएँ साड़ी के ऊपर ओढ़ती थी उतार कर चारपाई पर डाल दी और अपने बच्चे को लेकर उसके पीछे बैठ गई और बच्चे को स्तनपान कराने लगी। तभी हाथों में नंगी तलवारें लिए हुए विद्रोहियों का काफ़िला उधर ही आ गया। क़रीब चालीस मिनट तक वह काफिला चलता रहा और हर हर महादेव के नारे लगते रहे। गुद्दो चुपचाप साँस रोके बच्चे को दूध पिलाती रही। और भगवान् का नाम लेती रही। भगवान् ने उसकी सुनी और बच्चा भी न रोया और दूध पीते पीते सो गया। विद्रोहियों में चाहे वह भारतीय ही हों एक बार खून सिर पर सवार हो जाए तो न जाने किस को अपनी तलवार का शिकार बना लें। यही भय गुद्दो को खाए जा रहा था। चालीस मिनट के बाद जब काफ़िला निकल गया और शांति हो गई तब गुद्दो चारपाई के पीछे से निकल कर घर की ओर भागी। सास और पति दोनों ही उसके आने की राह देख रहे थे। पति ने खिड़की से देखा कि वह पहुँच गई है तो झट से दरवाज़ा खोल दिया और उसे घर के अंदर खींच लिया। उधर गुद्दो की माँ और पिता का बुरा हाल था कि उनकी बेटी कहाँ है। उस समय में फ़ोन तो होते नहीं थे इसलिए जैसे ही अगली बार कर्फ्यू उठा गुद्दो के पति भाग कर गुद्दो के सुरक्षित घर पहुँचने की खबर दे आए।

अपने बच्चों को और नाती पोतों को गुद्दो अपनी बहादुरी के किस्से सुनाती थी और गर्व महसूस करती थी कि किस तरह उसने अपनी रक्षा स्वयं की।

*

मिसिसागा, कनाडा
savita51@yahoo.com

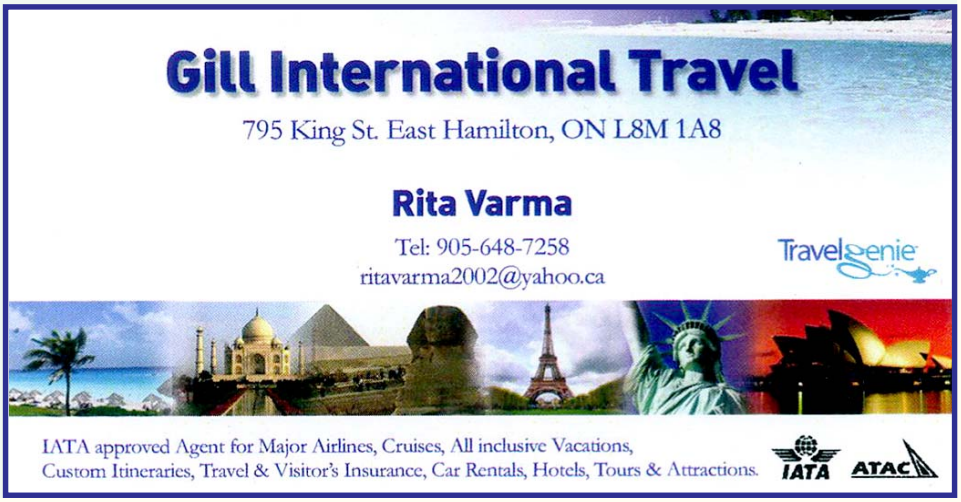

मैं मुक्त हूँ (काव्य संग्रह) : समीक्षक-अदिति मजूमदार

नारी के जीवन के उतार चढ़ाव का बखूबी से वर्णन

अदिति मजूमदार

मैं मुक्त हूँ (काव्य संग्रह) कवयित्री : रेनू यादव। मूल्य : रु १५० /- प्रकाशक : माण्डवी प्रकाशन, गाज़ियाबाद (उ.प्र.)२०१००१)

रेनू यादव का कविता संग्रह 'मैं मुक्त हूँ' नारी वेदना और संवेदना की ओढ़नी ओढ़े, स्त्री भी इंसान है की भावनाओं को बिखेरता, आधुनिक नारी की आधुनिक सोच के साथ सामाजिक विद्रूपताओं एवं विसंगतियों पर करारी चोट करता एक सशक्त काव्य संग्रह है। युवा लेखिका का आक्रोश बिम्बों के माध्यम से फूटता है। बिम्ब भी रोज़ मर्रा की ज़िन्दगी को समेटे हुए।

आज भी नारी को दुत्कारा जाता है, अपमानित किया जाता है। जहाँ अजन्मी बेटी को मारा जाता है; उस देश में देवी का पूजन बेमानी लगता है।

कविता 'पहचान' दिल को छू गई ....आदि काल से ही नारी को तुच्छ वस्तु के रूप में देखा गया है। दुष्यंत शकुन्तला को पहचानते नहीं जब तक अँगूठी नहीं देखते और आज भी नारी के पास अपनी पहचान नहीं। इतिहास बदला नहीं। नारी होने की विडम्बना सामने उभर कर आती है, उनकी कविता 'सरोगेट मदर' में। माँ की वेदना का प्रस्तुतीकरण अतुलनीय है ...न मैं देवकी बन सकी न ही यशोदा.....ये पंक्तियाँ हृदय के भीतर अपनी राह बनाती हैं।

उस देश में नारी स्वतंत्रता की बातें अर्थहीन हैं; जहाँ सड़क पर कई गिद्ध उस पर दृष्टी जमाए हुए हैं और मौका मिलते ही उसे नोच खाते हैं, जहाँ राजनेता कहते है कि जब मर्यादा का उल्लंघन होता है तो सीता हरण होता है... सीता भी बच नहीं पाई समाज के शत्रुओं से तब आम नारी का जीवन क्या होगा....इस पीड़ा की अभिव्यक्ति है, दर्द को उड़ेला है रेनू जी ने अपनी कविताओं में। वह दर्द पाठक का दर्द बनता है सोचने पर मजबूर करता है.....

संग्रह को दो भागों में बाँटा गया है ...प्रथम भाग में अस्तित्व, बदनाम औरत, हर आदमी, अर्धांगनी, मनुष्य और पशु, तुम और मैं जैसी कई सशक्त कविताएँ हैं, दूसरे भाग में चुप मत रहो गार्गी १ एवं २ प्रभावशाली कविताएँ हैं। एक नारी के जीवन के उतार चढ़ाव का बखूबी से वर्णन किया गया है। रेनू जी ने समाज के हर स्तर / हर वर्ग की नारी के बारे में लिखा हैं। स्त्री विमर्श का यह एक उम्दा काव्य संग्रह है। यह पढ़ने में बेहद रोचक लगा।

रेनू जी ने अपनी सुन्दर सरल भाषा का अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया है। इन कविताओं को पढ़ कर नारी मन न केवल अपने आप को इन कविताओं में पाता है बल्कि लगता है कि कोई उनकी आवाज़ बन बैठा लिख रहा हैं। घूरे का दीया, अर्धांगिनी, शीर्षक कविता मैं मुक्त हूँ, बदनाम औरत, विक्षिप्त आदि कविताएँ मन को झाकझोर देती है। पौराणिक महिलाओं को शब्दों की ध्वनि प्रदान कर आधुनिक नारी को सशक्त बनाने की कोशिश में पीछे नहीं हटी हैं रेनू जी।

मानव रिश्तों में बदलाव आने की वजह से आज कोई अपने आप से जुड़ा हुआ नहीं पाता हैं। रेनू जी कविताओं में आज और कल का समन्वय दिखता है जो कि अत्यंत प्रशंसनीय है। दो सहेलियाँ, हर आदमी, पहचान और प्रेम विवाह आदि उदहारण योग्य है। रेनू जी की कविताओं में नारी जागरण के बिगुल की ध्वनि सुनाई पड़ती है। संपादक मनु भारद्वाज जी ने भी इन कविताओं को समाज का स्पष्ट आईना बताया है।

*

300 Indian Branch Drive,
Morrisville-27560, USA
maditi2001@gmail.com

कबीरा-सा बुनकर बनने की सीख देते गीत

डॉ. साधना बलवटे

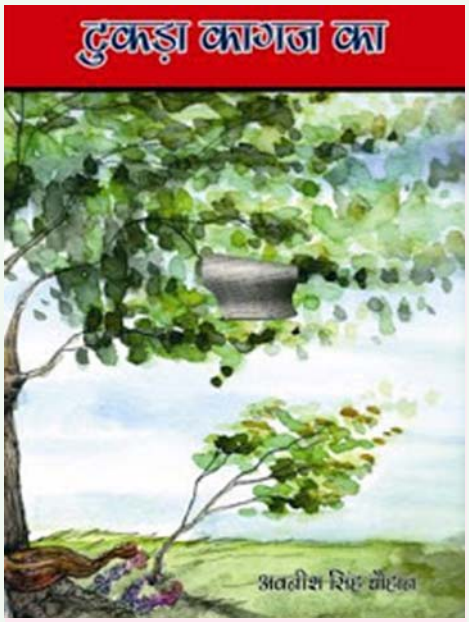

टुकड़ा कागज़ का (गीत-संग्रह)
कवि : अवनीश सिंह चौहान
मूल्य : रू १२५/- प्रकाशक : विश्व पुस्तक प्रकाशन,३०४-ए,बी.जी.-७, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-६३)

शिल्पकार जब अपने शिल्प को तराशता है तो वह एक ही समय में दो सृजन करता है, एक अन्तस की गहराइयों में सृजित होता है तो दूसरा स्थूल-जगत में मूर्तिमान हो उठता है। स्थूल-जगत में आकारबद्ध होने वाली प्रत्येक वस्तु नश्वर है। किन्तु हृदय के सूक्ष्मतम में होने वाला सृजन अविनाशी है। क्योंकि सृष्टि का चिरतंन सत्य 'स्पन्दन' है। पायल की छनछन हो, शिशु की किलकन हो, बछड़े की रंभन हो! जब तक स्पन्दन है, कविता का मरना निश्चित ही असंभव है। डॉ. अवनीश सिहं चौहान का नवगीत संग्रह 'टुकड़ा कागज का ' ऐसे ही चिरंतन सत्य से साक्षात्कार करवाती रचनाओं का संग्रह है।

संग्रह में अंतर-जगत की गहराइयों को छूता मन है तो, बाह्य-जगत की विषमताओं से परिचय करवाती मन:स्थिति है। टुकड़ा कागज़ का, एक तिनका हम, केशव मेरे, असंभव है, नदियाँ की लहरें, आदि गीत गहनतम अनुभूतियाँ हैं, तो अपना गाँवसमाज, चिड़िया और चिरोटे, गली की धूल, रिसते हुए रिश्तों की कहानी कहते नवगीत हैं। वक्त की आँधी, पंच गाँव का, सर्वोत्तम उद्योग, चुप बैठा धुनिया, श्रम की मंडी जैसे कई गीत समय की नब्ज में कँपकँपाती ध्वनि के संग रिदम बिठाते नवगीत है। समाज की रगों में उठती गिरती धड़कनों को न केवल अवनीश गिन सकते हैं वरन् पाठक वर्ग भी उसके नाद को बखूबी आत्मसात करता है और जब पाठक और कवि की आत्मा द्वैत से अद्वैत हो जाती है समझिये कवि की साधना सफल हो गई।

जहाँ तक गीतों के शिल्प का प्रश्न है नवगीत रचने में अवनीश जी सफल हुए हैं। आधुनिक समय में भाषा भी विदेशी संक्रमण से बच नहीं पाई है। यद्यपि संग्रह के गीतों में विषय की दरकार के अनुसार ही विदेशी शब्दों का उपयोग हुआ है फिर भी वह गीत की मधुरता कम करने का कारण तो बने ही हैं। जिन गीतों में आंचलिकता का अपनत्व समाया है उनमें रसात्मकता सहज ही शामिल हो गई है।

विविधवर्णी इस गीत संग्रह का मूल स्वर असत्य के प्रति सत्य आग्रह और विषम को सम करने का प्रयत्न है। अहं की अकड़ विनाश का कारण बनती है इस शाश्वत सत्य को अवनीश जी ने बड़े ही नवीन प्रतीक के माध्यम से कहा है.....'अकड़ गई जो टहनी मन की उसको तनिक लचा दे' विनयशील मन का विनय के महत्त्व को प्रतिपादित करता सुन्दर प्रयोग। ऐसे कई प्रयोग हैं जो सहज ही आकर्षित करने के साथ सहज ही अंतस को छू जाते हैं। यथा.....सोच रहे अपने सपनों की पैंजनिया टूट गई.....या तोड़ दिया है किसने आपसदारी का वह साज..' /गुमसुम गुमसुम-सी तू /भीतर भीतर तिरती है./...स्त्री की वेदना, तरलता कुछ ही शब्दो में व्यक्त हो गई। रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून को स्मरण कराती पंक्तियाँ जब जब मरा आँख का पानी' आई हैं तब तब विपदाएँ' सम्मान और शर्म को बचाये रखने की सीख देती है।

संग्रह का प्रतिनिधि गीत 'टुकड़ा कागज़ का' असीमित संभावनाओ का गीत है। गीत की अंतिम पंक्ति /चलता है हल गुड़ता जाए/ टुकड़ा कागज़ का/ में अवनीश जी प्रसिद्ध कवि उमाशंकर जोशी जी की कविता //छोटा मेरा खेत// की तरह कागज़ के टुकड़े को चौकोर खेत की तरह प्रस्तुत कर भावों के बीज रोप कर शब्दों की खेती करते दिखाई देते हैं।

/तकली में अब लगी रूई है, कात रही है, समय सुई है/ कबिरा सा बुनकर बनने में लगते कितने साल? नवगीत संग्रह की सबसे उत्कृष्ट पंक्तियाँ हैं। छोटी वय में ही कवि का मन ज़िन्दगी को कबीर की तरह बुनना चाहता है, ऐसा दार्शनिक चिंतन कवि के व्यक्तित्व की गहराइयों को दर्शाता है। अवनीश के गीतों में संतों-सा दर्शन है, परिस्थितियों का चिंतन है, और सर्वहित में प्रयत्नरत मन है।

कथ्य की परिपूर्ण संप्रेषणीयता के बीच जब भाव का आशावादी जल हिलोरे लेता है तो वहाँ आत्मा की शुद्धि का सरोवर बन जाता है। निश्चित ही नवगीत के इस सरोवर में अवगाहन कर सुधि पाठक स्वयं को स्फूर्त अनुभूत करेंगे। अवनीश जी को मननशील संग्रह के लिये बधाई और शुभकामनाएँ।

*

ई-२/३४६ अरेरा कॉलोनी
भोपाल (म.प्र)

पुस्तकें जो हमें मिलीं

पुस्तक: 'डाक्टर हरिवंश राय बच्चन का गद्य-साहित्य'
लेखिका: डॉ. पुष्पा सक्सेना
प्रकाशक: निर्मल पब्लिकेशन्स-१३९ गली नम्बर ३, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली ९४
मूल्य ९०० रूपये
पृष्ठ ४७६

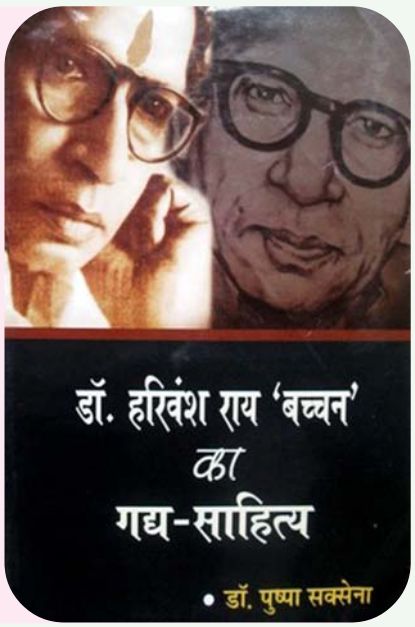

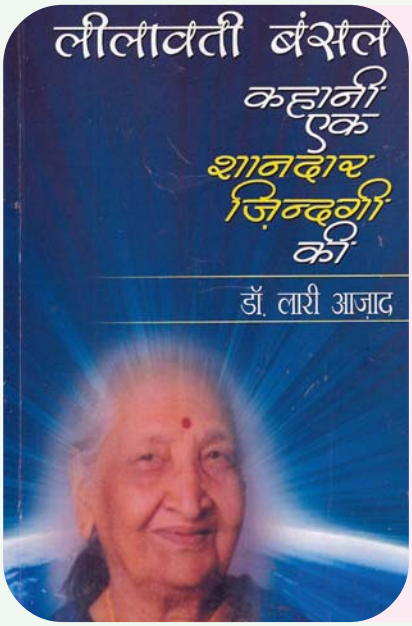

पुस्तक:
लीलावती बंसल, कहानी एक शानदार ज़िन्दगी की
लेखिका: डॉ. लारी आज़ाद
प्रकाशक: माला प्रकाशन
सी-१०, ग्रीन पार्क (मेन), नई दिल्ली-११०००१६

हम साथ-साथ हैं — हमसफ़र पत्रिकाओं के नये अंक.....

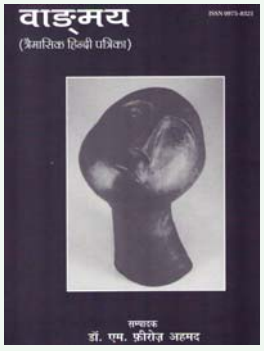

वाङ्मय
त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका
संपादक:
डॉ.एम.फ़िरोज़ अहमद
सम्पादकीय संपर्क:
२०५, ओहद रेजीडेंसी,
नियर पान वाली कोठी,
दादेपुर रोड, सिविल लाइन,
अलीगढ़-२०२००२

व्यंग्य यात्रा
सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी
हिन्दी व्यंग्य का युवा स्वर
त्रिकोण के छह कोण
संपादक -प्रेम जनमेजय
सम्पादकीय संपर्क -७३, साक्षर अपार्टमेंटस, ए-३, पश्चिमी विहार, नई दिल्ली-११००६३

पुष्पगंधा
साहित्य, कला एवं संस्कृति की त्रैमासिकी
संपादक-
विकेश निझावन
७७७, सिविल लाइंस
आई.टी.आई
बस स्टॉप के सामने,
अम्बाला शहर-१३४००३
(हरियाणा)

पत्रिकाएँ जो हमें मिलीं

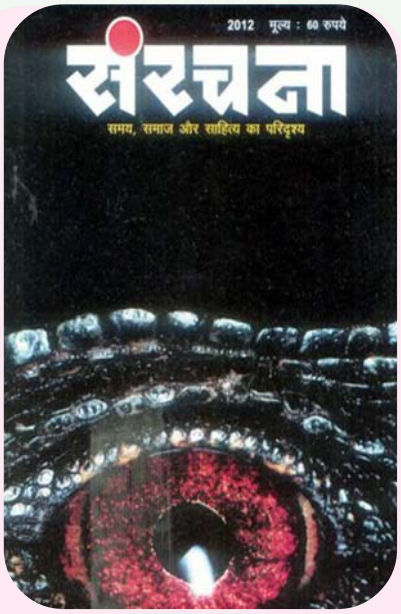

संरचना
संपादक: कमल चोपड़ा
सम्पादकीय कार्यालय: संरचना
१६००/१४, त्रिनगर, दिल्ली -३५

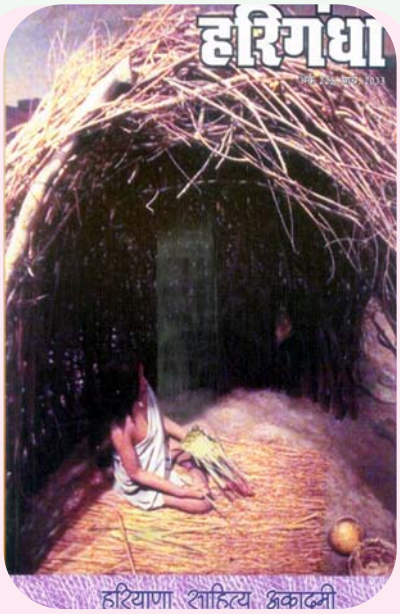

हरिगंधा
हरियाणा साहित्य अकादमी
मुख्य संपादक:
डॉ. श्याम सखा 'श्याम'
संपर्क:
निदेशक,
हरियाणा साहित्य अकादमी,
अकादमी भवन पी-१६,
सेक्टर-१४,
पंचकूला-१३४११३

सृजक
मासिक पत्रिका
शब्दों की नई दुनिया के निर्माता
प्रधान संपादक-सत्यम् शिवम्
सम्पादकीय कार्यालय: 'ॐ शिव माँ प्रकाशन',
श्री साँई राम शिवम् निवास,
शिवपुरी, बेलबनवा, मोतिहारी,
पूर्वी चम्पारण, बिहार।
पिन-८४५४०१

मनमीत
संपादक: डॉ. सरिता सिंह
होटल नीलकंठ, कलेक्ट्रेट,
आज़मगढ़-२७६००१.उ.प्र.

पुस्तक:
'बच्चों की श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ'
असमिया नाम: 'शिशुर श्रेष्ठ गल्प'
मूल लेखिका : डॉ. उषा यादव
अनुवादक: डॉ. नीलाक्षी फुकन नेउग,
डॉ. मोनिका शइकीया
प्रकाशक: अकणिर साहित्य सभा
मूल्य: 50 रुपये

BEST DEALS FLOORING

Residential & Commercial

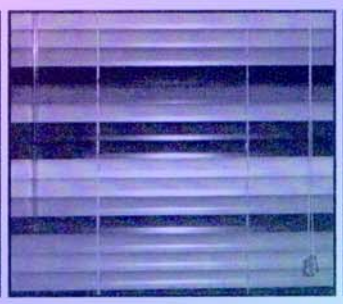

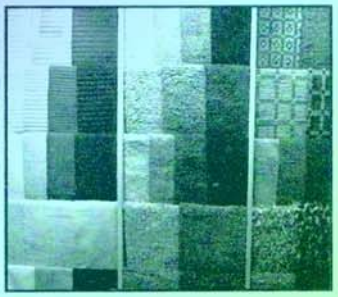

Free Delivery
Under Pad
Installation

Residential
Commercial
Industrial
Motels & Restaurants

Free Shop at
Home Service Call:
416-292-6248

WE ALSO SUPPLY

• Base Boards • Quater Rounds • Mouldings • Custom Stairs • All kinds of Trims • Carpet Binding Available

FREE - Installation - Under Padding - Delivery

Call: RAJ OR GARY 416-292-6248

130 Dynamic Drive, Unit #21, Scarborough, ON M1V 5C9

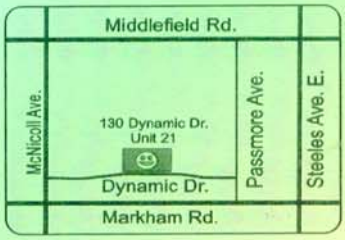

Custom Blinds • Ciramic Tiles • Hall Runner

Jaswinder Saran
Sales Representative

Direct: 416-953-6233
Office: 905-201-9977

HomeLife/Future Realty Inc.,
Brockerage
Independently Owned and Operated

205-7 Eastvale Dr., Markham, ON L3S 4N8
Highest Standard Agents...Highest Results!...

HOMELIFE HIGHER STANDARDS

REALTOR MLS MULTIPLE LISTING SERVICE

'ऋतुराज एक पल का' का भव्य लोकार्पण

हिन्दी के मूर्धन्य गीत-कवि डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र के भारतीय ज्ञानपीठ से सद्य:प्रकाशित, नये भावबोध के गीतों के संग्रह 'ऋतुराज एक पल का' का लोकार्पण ५ मई, २०१३ को दिल्ली के सुप्रसिद्ध इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के सभागार में हुआ। इंडियन ऑयल के सहयोग से इंटरनेशनल मेलोडी फ़ाउंडेशन द्वारा आयोजित इस समारोह के मुख्य अतिथि सिक्किम के राज्यपाल और अंग्रेज़ी के प्रतिष्ठित लेखक श्री बाल्मीकि प्रसाद सिंह,आइएएस थे और सम्मानित अतिथि उ.प्र. हिन्दी संस्थान के अध्यक्ष, वरिष्ठ कवि श्री उदय प्रताप सिंह थे तथा विशिष्ट अतिथि आईओसी के अध्यक्ष श्री आर.एस.बुटोला, पेट्रोनेट एलएनजी के प्रबंध निदेशक डॉ. अशोक कुमार बालयान और केन्द्रीय साहित्य अकादमी के सचिव डॉ. ब्रजेन्द्र त्रिपाठी थे। इनके अलावा मुख्य वक्ता वरिष्ठ गीत-कवि श्री माहेश्वर तिवारी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ.अशोक चक्रधर और जामिया मिलिया इस्लामिया के हिन्दी प्रवक्ता, युवा कवि डॉ. मुसव्विर रहमान थे।

*

'हिन्दी चेतना' के अप्रैल २०१३ अंक का विमोचन

३ मई को ओंटोरियो, कैनेडा में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति, हिन्दी प्रचारिणी सभा, हिन्दू कल्चरल सोसाइटी और 'हिन्दी चेतना' के तत्त्वाधान में एक भव्य कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें 'हिन्दी चेतना' के अप्रैल अंक का विमोचन हुआ। चित्र में दायें से बाएँ 'हिन्दी चेतना' के संस्थापक एवं प्रमुख संपादक- श्री श्याम त्रिपाठी, कवि डॉ. सुरेश अवस्थी, कवि डॉ.कुँअर बेचैन, कवि दीपक गुप्ता तथा नवल गरोत्रा नज़र आ रहे हैं।

*

पं.बृजलाल द्विवेदी सम्मान से नवाजे गए गिरीश पंकज

भोपाल। प्रख्यात कवि, आलोचक और लेखक विजयबहादुर सिंह का कहना है कि भारत में धर्म और राजनीति कोई दो बातें नहीं हैं। अन्यायी की पहचान और उससे 'लोक' की मुक्ति या त्राण दिलाने की सारी कोशिशें ही धार्मिक कोशिशें रही हैं। वे यहां पं.बृजलाल द्विवेदी स्मृति अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान समारोह में मुख्य वक्ता की आसंदी से बोल रहे थे। कार्यक्रम का आयोजन भोपाल के रवींद्र भवन में 'मीडिया विमर्श' पत्रिका द्वारा किया गया था। समारोह में सद्भावना दर्पण(रायपुर) के संपादक गिरीश पंकज को ११ हजार रूपए की सम्मान राशि, शाल, श्रीफल, मानपत्र और प्रतीक चिह्न देकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री पंकज ने कहा कि अपनी पत्रकारिता के माध्यम से वे भाषाई सद्भावना को फैलाने का काम कर रहे हैं।

*

विलोम चित्र काव्यशाला

चित्रकार : अरविंद नारले
कविः सुरेन्द्र पाठक

चित्र को उल्टा करके देखें

इस चित्र को देख जानिए, प्यार करने वालों की कहानी,
दीवार का ले कर सहारा, बैठी हुई है एक दिवानी,
क्लिप लगा कर सजा रखे हैं, अपने सर के लम्बे बाल,
और मुट्ठी लगाकर थाम रखे हैं, गम में लटके गोरे गाल,
थक गयी है वो प्रेमिका, प्रतीक्षा करते-करते आज,
टपक पड़े गालों पर आँसू, बिना काटे कड़वे प्याज़,
बाएँ हाथ से थाम लिया है, उसने अपना माथा,
किसको कोसे, किसे दोष दे, किसे सुनाये अपनी गाथा,
जो वादा करके भी न आये, उसका क्या वो करे इलाज,
नजर आये तो पास बुलाये, जोर से दे कर उसे आवाज़,
कहाँ होगा, कैसे होगा, क्यों नहीं आया प्रियतम,
यही सोच उसे तड़पाए, इसी बात का दिल में गम,
यही सोच जब मिलेगा, तब ऐसा सबक सिखाएगी,
लाख मनाने पर भी वो, उसके पास न जायेगी।

अरविंद नारले

सुरेन्द्र पाठक

सार : जिसके दिल में दया नहीं है, मासूम पशुओं के लिए, वो इस समाज में जीता है, केवल अपने ही लिए।

चित्र उलटा कर के देखो, कौन है ऐसा बदनसीब,
ऐसी सुंदर छोड़ प्रेमिका, किसके बैठा हुआ करीब,
गोद में कुत्ता ले कर बैठा, जो इंसान का सबसे अच्छा यार,
उधर इसके लिए तड़पे, जिसको इससे बहुत ही प्यार,
गर्दन तक हैं लम्बे बाल, और गर्दन आगे झुकी हुई,
कुत्ते की हालत नाज़ुक देख के, नज़र उसी पे टिकी हुई,
किसी वाहन से टक्कर खाकर, हो गया कुत्ता घायल,
इतनी चोट लगी टाँग पे, चलने के भी रहा न काबल,
कुत्ते के चेहरे पर दीखते, दर्द भरे दुःख के निशाँ,
धीरे-धीरे चुन चुन करता, कैसे समझाए अपनी ज़ुबान,
सोच रहा युवक बेचारा, जब प्रेमिका के पास जाएगा,
अपने न आने का कारण, उसको सब समझाएगा,
मा.फ़ कर देगी इसे, या इससे वो रूठ जायेगी,
मुझसे ज़्यादा कुत्ते को प्यार, का ताना बार-बार सुनाएगी,
माफ़ किया तो बुद्धिमानी, रूठ गई तो तो है उसकी नादानी,
पशुओं पर जो दया न करे, बस यह तो है हैवानी।

चित्र काव्यशाला

दो घोड़ों में हुआ विवाद
एक कलाकार ने लिया स्वाद
दोनों के सर काट दिए,
उनके धड़ कहीं जोड़ दिए
दोनों लगते हैं लाचार,
जैसे बिन पहियों की कार।
रिचा शर्मा (कनाडा)

*

प्रेमी अश्व

एक ही क्षण में हृदय मेरा घायल कर दिया
फिर दूजे क्षण ओझल होकर तोड़ भी दिया
मैं तेरे प्यार से पीड़ित पागल दीवाना
उसी क्षण खोज में तेरी प्रिये चल दिया
थका हारा भूखा प्यासा पल पल काटा युग युग जैसे
मन में आस पाले विश्वास का सहारा थामे
आँधियों तूफ़ान और काँटों से गुज़रा
प्यार की शक्ति ने हमें अंत में मिलाया है
आओ अब मिलकर बसायें अपना छोटा सा घर
भगवान् का दिया मिलन हरेगा हमारी सब तपन
अश्व प्रेम ही दिखाएगा अब राह हमें सारे जीवन।
राज महेश्वरी

*

आज की ताज़ा खबर

आज की ताज़ा खबर सुनी, तो हिनहिनाकर उछला घोड़ा
निज घोड़ी को खबर सुनाने, सरपट अपने घर को दौड़ा
देख के घोड़ी दंग रह गयी, कैसे लौटा आज निगोड़ा
अभी तो गया काम पे, क्या सह ना पाया मेरा बिछोड़ा ?
घोड़ा बोला, यह बात नहीं, सुनकर हो गई तुझे हैरानी
खेलों में भी आकर घुस गई, भारत में अब बेईमानी
बम्बई रेसकोर्स बंद किया चलवाया क्रिकेट आय पीअल
क्या खिलाड़ी, रेफरी मालिक पब्लिक से करते बल छल
बड़े-बड़े नेता अभिनेता, सब इस जाल में फँसे हुए हैं
सुन घोड़े की बातें सारी, घोड़ी ज़ोर से हिनहिना दी
यह कोई नई बात नहीं है, ना खड़ा खड़ा तू पीट मनादी
मैं तो शुरू से कहती थी, ये मानव होते ही हैं ऐसे
श्रम धर्म सब ताख में रख दें, जहाँ दीखते हों इनको पैसे
धन से भर सकते है समन्दर, लोभी मन नहीं धन से भरते
काश! धोखा देने से पहले, मानव अपनी मौत से डरते ।
सुरेन्द्र पाठक (कैनेडा)

*

चित्रकार : अरविंद नारले

हिन्दी चेतना के अप्रैल-जून 2013 अंक की चित्र काव्यशाला में प्रकाशित चित्र पर प्राप्त हुई रचनाएँ ।

दो घोड़ों का जोड़ा

ये दो घोड़ों का जोड़ा
ये सबसे आगे दौड़ा
अब आगे बढ़कर तुम भी
सहला दो इनको थोड़ा
लोगों को बिठाएं ख़ुद पर
और आगे-आगे भागें
कोई इनकी लगाम को खींचे
कोई चाबुक इन पर दागे
सीने में रखो बीएस दिल को
सहला दो इनको थोड़ा
कुछ की रोज़ी ये घोड़े
ये काम से न मुख मोड़ें
ये माने सबका कहना
और कोई कानून न तोड़ें
अब आगे बढकर तुम भी
सहला दो इनको थोड़ा
प्रेम मलिक (कैनेडा)

*

शर्म करो

अगर हम न होते
दुनिया का बोझ
कौन उठता
अगर हम न होते
इन्सान रेस में
भाग न लेता
हम बेज़ुबान हुए
तो क्या
हम भी दुनिया
का हिस्सा हैं
दुनिया हमसे
हम दुनिया से हैं ....
आदि काल से
हम तुम्हारे हैं
तुम हमारे हो
फिर कुछ तो शर्म करो
हमारा भी सम्मान करो .....
अदिति मजूमदार (अमेरिका)

*

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

आख़िरी पन्ना

फेसबुक पर प्रतिष्ठित कथाकार तेजेन्द्र शर्मा जी द्वारा लिखित भावनाओं से ओत-प्रोत एक खुला पत्र पढ़ने को मिला; जो उन्होंने अपने कार्यस्थल पर किसी की मौत, के बाद लिखा था, जिसे बचाने की उन्होंने भरपूर कोशिश की थी। आम आदमी को भी ऐसे नाज़ुक समय में महसूस होता है कि जीवन क्षणभंगुर है, जीवन फ़ानी है, ये भाव ज़ोर पकड़ते हैं और संवेगों का ज्वार-भाटा आता है। वे एक संवेदनशील व्यक्ति हैं, उनके दर्द को समझा जा सकता है। उन्हें अपराधबोध था कि वे उस व्यक्ति को बचा नहीं पाए, यह ऐसे समय की मन:स्थिति की स्वाभाविक प्रक्रिया है; जिसे काउंसलिंग, समय और उनके स्वयं के प्रयास ठीक कर देंगें। उन्होंने बताया कि उनकी काउंसलिंग हो रही है। यह बहुत ही बढ़िया तरीका है किसी भी तरह की कुंठाओं और अपराधबोध से निपटने का।

भारत में लोग इसे पश्चिम की देन समझते हैं। इसके महत्त्व को समझा नहीं जाता। वहाँ समाज में इतनी उथल-पुथल है और आए दिन बलात्कार के किस्से सुनने को मिलते हैं। देश की इस तरह की परिस्थितियों के कारण ढूँढने और उन्हें दूर करने की बजाय समाज की सोच की धारा को ही बदलने की कोशिश की जाती है; कभी अर्थ शास्त्री बहुत से तर्क देकर कई कारणों को अर्थ से जोड़ देते हैं और कभी समाज शास्त्री बलात्कार को पितृसत्ता से जोड़ कर हाथ झाड़ लेते हैं। इन सब की जड़ों में गहरे जाएँ तो अर्थ+पितृसत्ता+जीने का संघर्ष=मानसिक तनाव है, जो कई बार रसायनों का संतुलन बिगाड़ देता है। रसायनों का सही अनुपात ही मनुष्य को 'नार्मल' रखता है। असंतुलित प्राणी को मनोचिकित्सक के पास ले जाने की बजाए आज भी झाड़-फूँक, ओझा के पास ले जाना अधिक उचित लगता है लोगों को। मानवीय मन:स्थितियों के असंतुलन पर सही अप्रोच काउंसलिंग वगैरह सामाजिक ढाँचे को बदलने में सहायक ही होती है। अक्सर असंतुलन के कारण प्राणी समाज के कई घातक कारनामों को अंजाम दे देता है। परिवार और समाज ने उसकी स्थिति की ओर ध्यान ही नहीं दिया होता या उनके पास समय नहीं होता। शारीरिक रसायनों का अनियंत्रित होना समाज के कई रोगों का कारण हो सकता है, जिनमें आत्महत्या, बलात्कार और आतंकवाद भी है। बॉस्टन में मैराथन की समाप्ति रेखा पर हुए बम काण्ड में और ओक्लोहोमा में आए टारनेडो से बेघर हुए लोगों को सरकार काउंसलिंग प्रदान कर रही है; ताकि मानसिक संतुलन बना रहे।

मानसिक संतुलन देश की प्रगति के लिए कितना ज़रूरी है, इस ओर तो कभी ध्यान दिया ही नहीं जाता। एकल परिवारों में काउंसलिंग की महत्ता समझने की बहुत ज़रूरत है, जहाँ माँ-बाप दोनों काम करते हैं और बच्चे संयुक्त परिवार के उन मानसिक सुखों से वंचित रहते हैं; जो परोक्ष-अपरोक्ष रूप में उन्हें मिलते हैं और एक तरह की सुरक्षा प्रदान करते हैं।

एक समय था जब भारत में परिवार और बुज़ुर्ग काउंसलर का कार्य करते थे। अब समाज के बिगड़ते स्वरूप को देखते हुए, इस ढाँचे को फिर से खड़ा करने की ज़रूरत है। अगर हम समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहते हैं तो हमें अपनी अगली पीढ़ी को मानसिक रोगों से मुक्त रखने के सभी साधन अपनाने होंगे।

हालाँकि केन्द्रीय विद्यालयों में यह कार्य होता है- 'कैरियर और कौन्सलिंग के अन्तर्गत'। और भी संस्थानों में इसका कैरियर को लेकर प्रयोग किया जाता है। पर इसे अन्य क्षेत्रों में भी लाना चाहिए। बलात्कार से पीड़ित परिवार को और लड़की को काउंसलिंग प्रदान की जानी चाहिए। काउंसलिंग की प्रणाली को प्रोत्साहित करना होगा। सहायतार्थ केंद्र खोलने होंगे, जहाँ अच्छे काउंसलर रखे जाएँ। लोगों को इसके प्रति शिक्षित करना होगा.....

आपकी मित्र

सुधा ओम ढींगरा

ग्रीष्म के तपते हुए दिन के बाद जब चाँदनी रात आती है तो उस रात का अपना ही सुख होता है, ठीक वैसे ही जैसे जीवन में खराब समय के बाद अच्छा समय आता है । प्रकृति और जीवन, दोनों ही लगभग एक जैसे चक्र में चलते हैं ।